शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बालचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

अक्टूबर : १९६२ ☆ वर्ष अठारहवाँ, आश्विन, वीर नि०सं० २४८८ ☆ अंक : ६

इस जन्म का कर्तव्य

★

क्षणिक प्रसंगों से चित्त में वैराग्य लाकर ऐसा निर्णय तथा भावना करनी चाहिये कि—इसी मनुष्य भव में देव-गुरु की भक्ति के अपूर्व भाव प्रगट करके तथा आत्मा की अपूर्व रुचि प्रगट करके, जिस रीति से भव का अंत होकर आत्मसुख की प्राप्ति हो, वह करना है-ऐसी भावना ही कर्तव्य है।

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[२०९]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

(नया प्रकाशन)

अपूर्व अवसर

श्री राजचन्द्रजी कृत एक महान अमर काव्य। इस पर पूज्य कानजी स्वामी के प्रवचन गुजराती भाषा में तीन बार छप चुके हैं। धर्म जिज्ञासुओं की उस रचना को पढ़ने की भारी माँग होने से उसका हिन्दी अनुवाद भी छपकर तैयार हो गया है। साथ में भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत द्वादशानुप्रेक्षा तथा लघु सामायिक पाठ भी है। पृष्ठ संख्या १५० सजिल्द, मूल्य लागत से भी कम, ८५ नये पैसे मात्र। पोस्टेज अलग।

जिसको शास्त्र ज्ञान में ज्यादा अच्छा अभ्यास नहीं है, उसको भी सरलता से अच्छा ज्ञान मिलेगा। २१००, बुक छपी थी। ११००, के प्रथम से ही ग्राहक थे। इच्छुक हों, वे शीघ्र मंगवा लेवें।

सन्मति संदेश विशेषांक

पूज्य परम उपकारी सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी की ७३ वीं जन्म जयंती पर दिल्ली से सन्मति संदेश कार्यालय की ओर से खास भक्तिवश और धर्म प्रभावना के लिये विशेषांक प्रगट किया है, जिसमें १०० पृष्ठ उपरान्त आर्ट पेपर ऊपर १८ सुन्दर चित्र, तीर्थक्षेत्र के चित्र तथा पू० गुरुदेव श्री कानजी स्वामी द्वारा जो महान धर्म प्रभावना हो रही है, उसका वर्णन, विद्वानों द्वारा स्वामीजी का परिचय तथा संक्षेप में जीवन चरित्र, श्री कुन्दकुन्दाचार्य-पद्मनन्दीनाथ-विदेहक्षेत्र में गये थे, आकाशगमन शक्ति सम्पन्न ऋद्धिधारक थे उसके आधारभूत अनेक प्राचीन शिलालेख सहित ऐतिहासिक खोज पूर्ण सामग्री दर्शक लेख, आदि खास महत्वपूर्ण लेखों का संग्रह है। जो खास विद्वानों, कवियों और लेखकों के द्वारा लिखे हुये हैं, हरेक जिज्ञासु को अवश्य पढ़ने योग्य है, मूल्य दो रुपया होने पर भी एक धर्म प्रेमी भाई द्वारा प्रचारार्थ एक रुपया में मिलेंगे, (पोस्टेज अलग)

श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बालचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

अक्टूबर : १९६२ ☆ वर्ष अठारहवाँ, आश्विन, वीर नि०सं० २४८८ ☆ अंक : ६

ज्ञानी ज्ञान के ही कर्ता हैं

[ज्ञानी अबंधपरिणामी हैं; अबंधपरिणामी ऐसे ज्ञानी के ज्ञानमय परिणाम कर्म आदि में निमित्त भी नहीं हैं–ऐसा समझाकर यहाँ ज्ञानी की अलौकिक दशा का स्वरूप बतलाया है।]

(श्री समयसार गाथा १०० तथा १०१ के अद्भुत प्रवचनों से)

इस कर्ताकर्म अधिकार में आत्मा का परद्रव्य तथा परभावों का अकर्तृत्व बतलाकर अकेला ज्ञायकस्वभाव बतलाते हैं; उस ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता द्वारा सम्यग्दर्शनादि निर्मलभावों की उत्पत्ति होती है; धर्मी उसके कर्ता हैं और वही धर्मात्मा का कार्य है।

धर्मी जीव अपने निर्मलभावों में व्याप्त है, इसलिये उन निर्मल भावों के साथ तो व्याप्य-व्यापकभाव से कर्तृत्व है; अज्ञानी मलिन भाव करके उसका कर्ता होता है; परंतु परद्रव्य की पर्याय में तो कोई आत्मा व्याप्त नहीं होता, इसलिये पर का कर्तृत्व तो है ही नहीं।

अब कोई पूछे कि—आत्मा पर में व्यापक होकर उसे भले ही न करे, परंतु निमित्तरूप से तो पर का कर्ता है न? निमित्त-नैमित्तिक भाव से तो कर्ता-कर्मपना है न?—तो उसका उत्तर देते हुए आचार्यदेव १००वीं गाथा में कहते हैं कि—भाई, ज्ञानस्वभावी आत्मा वास्तव में निमित्तरूप से भी पर का कर्ता नहीं है। विकार को वास्तव में आत्मा नहीं कहते, जो निर्मल पर्याय में अभेद हुआ, उसी को आत्मा कहते हैं और ऐसा 'आत्मा' पर सन्मुख परिणमित न होता हुआ कर्मादि पर का निमित्त भी नहीं होता। इस गाथा में अद्भुत-अलौकिक बात है।

— प्रथम, उपादानरूप से तो आत्मा आठ कर्म आदि परद्रव्य की पर्याय का कर्ता नहीं है।

— दूसरे, यदि आत्मा स्वभाव से कर्मादि पर का निमित्त हो, तो पर का निमित्तपना तीनों काल बना ही रहे; इसलिये सदैव परोन्मुखता बनी ही रहे और स्वभाव में अभेद होने का अवसर ही न आये।

— योग तथा विकारी उपयोग तो कर्म के निमित्त हैं, परंतु ज्ञानी धर्मात्मा तो उस योग और विकारी उपयोग के भी कर्ता नहीं हैं, तो फिर वे कर्म के निमित्तकर्ता कैसे होंगे ? निर्मल उपादान में से विकार का कर्तृत्व छूट गया है, इसलिये विकार के निमित्त से बँधनेवाले कर्म का निमित्तकर्तापना भी उन धर्मात्मा को छूट गया है।

— अज्ञानी के क्षणिक योग और विकारी उपयोग ही कर्म के निमित्त हैं, किंतु उस विकार को आत्मा नहीं कहते।

— धर्मी का आत्मोन्मुख भाव भी यदि कर्मबंध का निमित्त होता रहे तो कर्म छूटेगा कब ? और आत्मा आत्मारूप कब होगा ? स्वभावोन्मुख होने से कर्म का निमित्तपना छूट जाता है।

आत्मा का स्वभाव ऐसा नहीं है कि कर्म का निमित्त हो। यदि स्वभाव से आत्मा कर्म का निमित्त हो, तब तो जगत में जहाँ-जहाँ कर्मादि अथवा घड़ा-वस्त्र-रथ-कुंडलादि कार्य होंगे, वहाँ-वहाँ उनके सामने ही रहना पड़ेगा, इसलिये स्वोन्मुख होने का अवसर ही नहीं रहेगा। पर के कार्य में निमित्तरूप से उपस्थित होता रहेगा, इसलिये परसन्मुख ही बना रहेगा और स्वोन्मुखता तो होगी ही नहीं; एकांत पर प्रकाशकपना ही बना रहेगा, स्वप्रकाशन तो होगा नहीं, इसलिये सम्यग्ज्ञान नहीं होगा। इसलिये स्वभाव से आत्मा पर के कार्य का निमित्त है—ऐसी जिसकी दृष्टि है, वह मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यात्वभाव से विकार का कर्ता होकर वह कर्म बंधन में निमित्त होता है; किंतु उस मिथ्यात्व भाव को 'आत्मा' नहीं कहते; ज्ञानस्वभाव से परिणमित आत्मा ही वास्तव में आत्मा है और वह अथवा कर्मबंधन का या पर के कार्य का निमित्तकर्ता भी नहीं है।

मेरा आत्मा निमित्त से तो पर का-कर्म का कर्ता है न ?—ऐसी जिसकी दृष्टि है, उसकी दृष्टि विकार पर है; आत्मा के स्वभाव पर उसकी दृष्टि नहीं है; उसे तो अभी विकार करना है और कर्म का निमित्त बनना है, किंतु स्व-पर प्रकाशक ज्ञातारूप से नहीं रहता है। अज्ञानी पर का निमित्त होने जाता है, वहाँ स्वसन्मुखज्ञान को चूककर विकार के कर्तृत्व में अटक जाता है। ज्ञानी तो, 'मेरा आत्मा निमित्तरूप से भी पर का कर्ता नहीं है'—ऐसा जानकर उपयोग को पर से विमुख करके स्वभावोन्मुख करते हैं। इसप्रकार स्वभावोन्मुख हुआ स्व-पर प्रकाशक उपयोग स्वयं तो पर के कार्य का निमित्तकर्ता नहीं होता, परंतु उलटा परज्ञेयों को ज्ञातारूप से जानते हुए उन्हें अपने ज्ञान का

निमित्त बनाता है। देखो तो, दृष्टि बदली वहाँ सब कुछ बदल गया! पहले स्वयं अज्ञान के भाव से पर का निमित्त होता था, उसके बदले अब पर को अपने ज्ञान का निमित्त बनाता है। स्व-पर प्रकाशक सामर्थ्य द्वारा पर को ज्ञेयरूप से ही जानता हुआ उसे अपने ज्ञान का निमित्त बनाता है।

— कुम्हार घड़े का तन्मयरूप से तो कर्ता नहीं है, किंतु निमित्तरूप से कर्ता तो है न?—इसके उत्तर में तीन बातें हैं:—

— उसका त्रिकाली आत्मा तो घड़े का निमित्तरूप से भी कर्ता नहीं है। अब पर्याय में दो प्रकार—

— यदि वहाँ कुम्हार का आत्मा सम्यग्दृष्टि हो तो उस सम्यग्दृष्टि की निर्मल परिणति तो चैतन्य के साथ ही अभेद हुई है, इसलिये उसकी पर्याय भी घड़े की निमित्तकर्ता नहीं है। योग और कषायभाव तो स्वभाव से भिन्नरूप होने के कारण उस काल ज्ञानी उनका अकर्ता है।

— और यदि वह कुम्हार मिथ्यादृष्टि हो तो वह अज्ञानभाव से योग तथा कषाय का कर्ता होता है; (योग और उपयोग—ऐसा कहा, उनमें से उपयोग तो कषायरूप व्यापार है), ऐसे योग तथा उपयोग तो कर्मादि के निमित्त हैं; किंतु उस निमित्तपने कर्तृत्व तो अज्ञानभाव में हैं, और उस अज्ञानभाव को 'आत्मा' ही नहीं कहते। ज्ञानस्वभावी आत्मा अकर्ता ही है।

अहा, योग और मलिन उपयोग का कर्तृत्व भी ज्ञानी की दृष्टि में नहीं है। जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उसमें भी उस मलिनता का कर्तृत्व नहीं है; तो फिर विकार के बिना आत्मा घट-पट या कर्म का निमित्तकर्ता कैसे होगा? कर्म का निमित्त तो योग और कषाय है, इसलिये निमित्तकर्तापना उसी को लागू होता है जो योग और कषाय का कर्ता बनकर परिणमित होता है।

— कर्म की पर्याय हुई, वह उसका निश्चय, और मैं जीव उसका निमित्तरूप से व्यवहार कर्ता... देखो, यह अज्ञानी की विपरीत दृष्टि!! उसकी पर्याय में विकार का कर्तृत्व कभी नहीं छूटता।

— ज्ञानी तो जानता है कि मैं स्व-पर प्रकाशक ज्ञाता, और जगत के पदार्थ ज्ञेयरूप से मेरे निमित्त! मेरी स्व-पर प्रकाशक शक्ति विकसित हुई, वह निश्चय, और परज्ञेय निमित्तरूप हैं, वह व्यवहार।

जब तक पर का निमित्तकर्ता होने की बुद्धि है, तब तक पर सन्मुखबुद्धि होने से संसार ही है। जो स्वभाव में विकार को तन्मय मानता है, वही विकार का कर्ता होता है; और जो विकार कर्ता

होता है, वही कर्मादि का निमित्त होता है। इसलिये जिसकी दृष्टि में पर का निमित्त होने की बुद्धि है, उसकी दृष्टि विकार में ही तन्मय हुई है, इसलिये विकार का ही सेवन तथा निर्विकार स्वभाव का अनादर कर-करके वह निगोद में जायेगा। ज्ञानी तो विकार का और चैतन्य का अत्यंत भेदज्ञान करके, विकार से भिन्न अपने चिदानंदस्वभाव की ही आराधना करते-करते, कर्म का भी निमित्त कर्तापना छोड़कर अपने सिद्धपद को साधता है।

निमित्तकर्ता होने की दृष्टि का फल निगोद....

स्वभावसन्मुख दृष्टि का फल सिद्ध दशा....

देखो, दृष्टि के फेर में सृष्टि का फेर है। जहाँ जिसकी दृष्टि पड़ी है, उस ओर उसकी सृष्टि अर्थात् पर्याय की उत्पत्ति होती है।

* * *

जो जिसका कर्ता हो, वह उससे पृथक् नहीं होता; आत्मा यदि पर का कर्ता हो तो वह पर से पृथक् नहीं हो सकता। यदि आत्मा घड़े को करता हो (बनाता हो) तो वह घड़े से अभिन्नता के कारण आत्मा ही घड़ा हो जाये; किंतु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। आत्मा पर का कर्ता नहीं है। अज्ञानभाव से आत्मा अपने विकारी भावों को करता है। जिसकी दृष्टि चैतन्य से बाह्य है, जिसकी वृत्ति बहिर्मुख है—ऐसा अज्ञानी जीव परसन्मुख वर्तता हुआ, क्षणिक योग और बहिर्मुख उपयोग द्वारा ही कर्म का निमित्तकर्ता होता है। यह निमित्तकर्तापना क्षणिक अज्ञान से ही है, किंतु आत्मद्रव्य के स्वभाव में तो निमित्तकर्तापना भी नहीं है। विकार को करे और कर्म का निमित्त हो—ऐसा आत्मा के द्रव्यस्वभाव में है ही नहीं.... ऐसे स्वभाव को दृष्टि में—प्रतीति में लेना और स्वभाव सन्मुख होकर निर्मल-अकर्ता-चैतन्यभावरूप से परिणमित होना, सो धर्म है, वह ज्ञानी धर्मात्मा का कार्य है।

द्रव्य-गुण और उसमें अभेद हुई निर्मल पर्याय ही आत्मा का परमार्थ है; विकार वह आत्मा का परमार्थ स्वरूप नहीं है; इसलिये विकार निमित्त और कर्म नैमित्तिक—ऐसे निमित्त-नैमित्तिकसंबंध पर जिसकी दृष्टि है, उसकी दृष्टि शुद्धात्मा पर नहीं है। भाई, अपनी दृष्टि को तू शुद्ध आत्मा में युक्त कर और निमित्त-नैमित्तिक संबंध की दृष्टि छोड़। जो उपयोग अंतरस्वभावोन्मुख हुआ, उसमें से कर्म का निमित्त-कर्तापना छूट गया; उस उपयोग ने निजस्वभाव के साथ संबंध

जोड़ा और कर्म के साथ का निमित्तसंबंध तोड़ दिया।—इसप्रकार पर के साथ का संबंध तोड़कर अपने शुद्धात्मा में उपयोग को जोड़ना ही तात्पर्य है।

सम्यग्दृष्टि छोटी-सी बालिका हो या विशालकाय हाथी हो—वे सब अपने आत्मा का ऐसा ही अनुभव करते हैं कि—मेरा आत्मा कर्म का निमित्त भी नहीं है; जो कर्म का निमित्त हो, वह मेरा स्वरूप नहीं है। शरीरादि जड़ की क्रिया का मैं कर्ता तो नहीं हूँ, किंतु उसका निमित्त भी नहीं हूँ, मैं तो निर्मल ज्ञानक्रिया का ही कर्ता हूँ।

इस मध्यलोक में, ढाई द्वीप के बाहर असंख्यात सम्यग्दृष्टि तिर्यंच हैं; उनमें किसी को जातिस्मरणज्ञान होता है, किसी को अवधिज्ञान भी होता है; किसी को संयतासंयतरूप पाँचवाँ गुणस्थान (श्रावकपना) होता है; तिर्यंच को भी श्रावकपना होता है। मनुष्यों में तो सम्यग्दृष्टि जीव संख्यात ही हैं, किंतु तिर्यंचों में असंख्यात हैं। समूर्च्छन के अतिरिक्त मनुष्यों की संख्या ही थोड़ी (संख्यात) है और उसमें भी सम्यग्दृष्टि तो बहुत कम हैं; तिर्यंचों की संख्या बहुत भारी (असंख्यात) है और उसमें असंख्यातवें भाग सम्यग्दृष्टि हैं; तथापि वे भी असंख्यात हैं। कोई मछली होते हैं; कोई सिंह, कोई हाथी, कोई बंदर, कोई नेवला तथा कोई सर्प—ऐसे तिर्यंच जीव भी चैतन्य की प्रतीति करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं; वे सभी जीव अपने आत्मा का ऐसा ही अनुभव करते हैं कि—जो निर्मल भाव मेरे स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुआ, उसी का मैं कर्ता हूँ; मलिनभाव मेरे स्वभाव का कार्य नहीं है।

इसप्रकार ज्ञानी ज्ञान का ही कर्ता है—यह बात आचार्यदेव १०१ वीं गाथा में समझाते हैं:—

अज्ञानी अज्ञानभाव से मात्र अपने विकार को ही करता था और पुद्गलकर्म को निमित्त होता था। अब उससे विमुख होकर ज्ञानी-धर्मात्मा अपने ज्ञानस्वभाव से भरपूर ऐसे ज्ञानमयभाव को ही करता है और पुद्गलद्रव्य के परिणाम को अपने ज्ञान का ही निमित्त बनाता है। आचार्यदेव ज्ञानी का कार्य समझाते हैं कि—

— अज्ञानी तो अपने उपयोग को मलिन करके पुद्गल कर्म को निमित्त बनाता था।

अब ज्ञानी तो पुद्गल के परिणाम को अपने निर्मल उपयोग का ज्ञेय बनाता हुआ—तटस्थरूप से उसे जानता हुआ—उसमें युक्त हुए बिना उसका ज्ञाता रहता हुआ—उसे अपने ज्ञान का ही निमित्त बनाता है।

ज्ञेय-ज्ञायकरूप निर्दोष संबंध के अतिरिक्त ज्ञानी को पर के साथ दूसरा कोई संबंध नहीं है;

विकाररूप निमित्त-नैमित्तिक उसका टूट गया है। ज्ञेय-ज्ञायक संबंध में तो अपने स्व-पर प्रकाशक सामर्थ्य की प्रसिद्धि है, उसमें कहीं विकार नहीं है। दृष्टि के बल से ज्ञानस्वभाव के आश्रय से ज्ञानी को स्व-पर प्रकाशक सामर्थ्य का विकास ही हो रहा है; वे तो ज्ञानमय भाव में (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों ज्ञानमयभाव ही हैं-उनमें) ही परिणमित होता है, उसके ज्ञानमयभाव में समस्त आगम का सार आ गया है; वह जीव 'अबंधपरिणामी' हो गया है।

अबंध स्वभावी तो समस्त आत्मा हैं, किंतु ज्ञानी तो 'अबंध परिणामी' हैं। ज्ञानी के परिणाम अबंध हैं, बंध परिणाम ज्ञानी के हैं ही नहीं। अबंध परिणाम हुए, वे किसे निमित्त होंगे? क्या वे कर्म के निमित्त होते हैं?—नहीं; अबंध परिणाम तो ज्ञान और आनन्दमय हैं; ऐसे अबंध परिणामरूप से परिणमित होते हुए ज्ञानी विकार के कर्ता नहीं हैं, कर्म बंध के निमित्त नहीं हैं। वाह! विकार से और कर्म से पृथक् ही हो गये!

प्रसिद्ध हो कि सम्यग्दर्शन वह संवर-निर्जरा और मोक्ष है तथा सम्यग्दृष्टि को आस्रव-बंध नहीं है और प्रसिद्ध हो कि मिथ्यात्व ही संसार है, मिथ्यादृष्टि को ही आस्रव-बंध है। अहा, दृष्टि की यह बात समझे तो सारी दशा पलट जाये।

ज्ञानावरणादि आठों कर्म, शरीरादि नोकर्म या रागादि भावकर्म—उन सबको ज्ञानी अपने, ज्ञानपरिणाम से भिन्न ही देखते हैं। उनके होकर उन्हें नहीं जानते किंतु तटस्थ होकर उन्हें जानते हैं; ज्ञानमय रहकर ही जानते हैं। इसप्रकार ज्ञानी ज्ञान के ही कर्ता हैं। **कौन सा 'ज्ञान'-कि जो अंतरोन्मुख होकर अभेद हुआ है वह। यहाँ अकेले शास्त्रादि बाह्य ज्ञातृत्व को ज्ञान नहीं कहते; ज्ञानस्वभाव की ओर उन्मुख होकर उसमें तन्मयरूप से आनन्द का अनुभव करता हुआ जो ज्ञान प्रगट हुआ—उसी ज्ञान के ज्ञानी कर्ता हैं।**

अहो! आचार्यदेव ने ज्ञानी का अलौकिक स्वरूप बतलाया है। ऐसे ज्ञानियों को नमस्कार हो!

स्वभाव की उपलब्धि से

भवभ्रमण का अंत होता है

जीव अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, किंतु निजस्वभाव की उपलब्धि न होने से दु:खी है।

स्वभाव की उपलब्धि क्यों नहीं है ?

—क्योंकि जीव अपने स्वभाव का अनुसरण नहीं करता और बाह्य में दृष्टि डालकर कर्म का अनुसरण करता है, इसलिये वह अपने स्वभाव को उपलब्ध नहीं करता अर्थात् उसे अपने आनन्द का अनुभव नहीं होता, किंतु विकारी भाव की आकुलता का अनुभव करता हुआ वह चारगति में भ्रमण करता है।

वह भ्रमण कैसे दूर हो ?

यदि स्वयं अपने स्वभाव का ही अनुसरण करे तो निर्मल धर्मरूप परिणमन हो, और निर्मल धर्म में चार गति का फल नहीं होता; वह धर्म चारों गति को निष्फल बनाकर सिद्धपद की प्राप्ति कराता है। इसप्रकार स्वभाव की उपलब्धि से भवभ्रमण दूर होता है। भाई, तू अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव से परिपूर्ण है; उस स्वभाव का अनुसरण करने से आनन्द का स्वाद आता है; किंतु पर का अनुसरण करने से तो तेरा आनन्द का स्वाद आकुलता के कारण नीरस हो जाता है। तुझे चार गति की आवश्यकता न हो तो तू अपने स्वभाव का ही अनुसरण कर। स्वभाव का अनुसरण करने के फल में संसार की चार गतियाँ नहीं होती, उसमें तो आनन्द का अनुभव ही होता है। देवगति या मनुष्य गति का प्राप्त होना कहीं धर्म का फल नहीं है, वह तो विकार का फल है। धर्म का फल तो स्वभाव की प्राप्ति अर्थात् मोक्ष है। *[—प्रवचन से]*

आस्तिक और नास्तिक का स्वरूप

प्रश्न—आस्तिक का अर्थ क्या ?

उत्तर—जो इस आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व का स्वीकार यथार्थस्वरूप से करते हैं, उन्हें आस्तिक कहते हैं।

प्रश्न—नास्तिक का अर्थ क्या ?

उत्तर—जो आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व को यथार्थस्वरूप से न मानें, अगर तो विपरीत मानें वे नास्तिक हैं।

प्रश्न—जैनमत आस्तिक है या नास्तिक ?

उत्तर—जैनमत आस्तिक है।

प्रश्न—क्या जैनमत ईश्वर का होना मानत है ?

उत्तर—हाँ, जैनमत में ही ईश्वर का अस्तित्व यथार्थरूप से माना गया है।

प्रश्न—ईश्वर को जैनमत में किसप्रकार माना जाता है ?

उत्तर—जिन आत्माओं ने अपनी शक्ति का सम्पूर्ण विकास किया है और राग-द्वेष को सम्पूर्ण दूर किया है, वे आत्मा ईश्वर हैं; उन्हें भगवान, जिनदेव, परमात्मा, सिद्ध, अरिहंत, शुद्धात्मा आदि नामों से भी जाना जाता है।

प्रश्न—वह ईश्वर क्या करते हैं ?

उत्तर—वे अपने ज्ञान से सारे जगत को जानते हैं, और अपने आत्मा के आनन्द को भोगते हैं। वे इस जगत का कुछ नहीं करते; वे तो जगत के ज्ञाता हैं, किंतु कर्ता नहीं हैं।

प्रश्न—वे इस जगत के कर्ता क्यों नहीं हैं ?

उत्तर—क्योंकि इस जगत के सभी पदार्थ अपना-अपना कार्य अपने आप करते ही रहते हैं, उन्हें किसी अन्य करनेवाले की आवश्यकता ही नहीं है, स्वभाव से ही प्रत्येक पदार्थ कार्यवाला है।

पुनश्च, ईश्वर को राग-द्वेष ही नहीं है। राग-द्वेष के बिना कर्तृत्व की वृत्ति होती ही नहीं। 'मैं ऐसा करूँ, वैसा करूँ' ऐसी वृत्ति जहाँ होती है, वहाँ राग-द्वेष और आकुलता होती है; जहाँ आकुलता होती है, वहाँ दु:ख होता है; और जिसके दु:ख होता है, वह ईश्वर नहीं हो सकता। ईश्वर के दु:ख और राग-द्वेष नहीं होते।

यदि ईश्वर कर्ता हो तो इस जगत में किसी जीव को दु:खी किसलिये करे? मारे किसलिये? पाप किसलिये करावे? इसलिये ईश्वर कुछ नहीं करता; किंतु जीवों के अपनी योग्यतानुसार वे अवस्थाएँ स्वत: होती ही रहती हैं। अज्ञान और राग-द्वेष से जीव अपने आप ही दु:खी होते हैं, ईश्वर उन्हें दु:खी नहीं करता; और ज्ञान तथा वीतरागता से जीव अपने आप ही सुखी होता है, ईश्वर कहीं उन्हें सुख नहीं देता।

ईश्वर तो सम्पूर्ण सुखी आत्मा है, वह कृतकृत्य है। उसे कुछ उपाधि नहीं है। पर का कुछ करने की इच्छा तो आकुलता है और आकुलता दु:ख है। ईश्वर एक नहीं किंतु अनंत हैं।

प्रश्न—ईश्वर को इस सृष्टि का कर्ता न मानने से तो जैन नास्तिक सिद्ध होंगे?

उत्तर—कदापि नहीं; 'ईश्वर को सृष्टि का कर्ता मानने से ही आस्तिकता है और कर्ता न मानने से नास्तिकता है'—यह मान्यता सर्वथा भ्रम है। आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व को यथार्थस्वरूप से माननेवाला आस्तिक है। जैनमत में ही आत्मा और परमात्मा का वास्तविक स्वरूप मानने में आया है, इससे जैनमत ही वास्तव में आस्तिक है। और जो आत्मा और परमात्मा (ईश्वर) का स्वरूप यथार्थ रीति से नहीं मानते, वे वास्तव में नास्तिक हैं।

प्रश्न—इस सृष्टि का कर्ता ईश्वर है—ऐसा माने, वह आस्तिक है या नास्तिक?

उत्तर—प्रथम तो ईश्वर (परमात्मा) के यथार्थस्वरूप को उन्होंने नहीं माना; और दूसरे जगत में अनंत जीव और जड़ पदार्थ स्वतंत्र स्वयंसिद्ध अनादि-अनंत हैं, उनका कोई कर्ता नहीं है, वे सब स्वतंत्र अस्तित्ववाले हैं, तथापि 'ईश्वर ने उन्हें किया है' ऐसा मानकर उनके स्वतंत्र अस्तित्व का निषेध किया है, इससे वास्तव में तो वे नास्तिक हैं।

'ईश्वर' अर्थात् 'परमात्मा' वह सम्पूर्ण सुखी आत्मा (जीव) है। वही आत्मा सम्पूर्ण सुखी होता है जिसे सम्पूर्ण ज्ञान प्रगट हुआ हो। यदि सम्पूर्ण ज्ञान प्रगट न हो—किसी भी अंश तक अज्ञान

हो तो वहाँ तक जीव को सम्पूर्ण सुख नहीं होता। ईश्वर को सम्पूर्ण ज्ञान है, इससे वे सम्पूर्ण सुखी हैं, जो सम्पूर्ण सुखी हो, उसे किंचित्मात्र भी दु:ख नहीं होता।

राग या द्वेष अथवा कुछ नवीन करने की वृत्ति, वह दु:ख की निशानी है। ईश्वर को वह राग-द्वेष नहीं होता, इससे ईश्वर सम्पूर्ण सुखी, सम्पूर्ण ज्ञानी और राग-द्वेषरहित हैं। ऐसे स्वरूप से ईश्वर को न मानना, सो नास्तिकता है।

'मुझे ईश्वर ने बनाया है'—ऐसा माननेवाला नास्तिक है। क्योंकि 'ईश्वर ने मुझे बनाया है' इसका अर्थ यह हुआ कि 'पहले मैं नहीं था' अर्थात् मेरी नास्ति थी; इसप्रकार अपने ही अस्तित्व का अस्वीकार सो नास्तिकता है। इस जगत में जितने पदार्थ हैं, वे सब स्वभाव से ही सत् हैं।

प्रश्न—ईश्वर तो सम्पूर्ण शुद्ध वीतराग हैं, इससे वे तो पर का कुछ नहीं करते, परंतु छद्मस्थ रागी जीव तो पर का कुछ करते हैं न?

उत्तर—रागी जीव भी पर का कुछ नहीं कर सकता। जैसा एक जीव का स्वभाव, वैसा ही सभी जीवों का स्वभाव; जैसा ईश्वर का स्वभाव, वैसा ही सभी जीवों का स्वभाव। जैसे ईश्वर पर का कुछ नहीं कर सकता किंतु मात्र जानता ही है, उसीप्रकार इस विश्व के समस्त जीव पर का कुछ नहीं कर सकते, पर को मात्र जानते ही हैं। जानने के समय जो राग-द्वेषादि करते हैं, वह जीव का दोष है। वास्तव में तो उस राग को भी जानना जीव का स्वभाव है। इसप्रकार ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को पहिचानकर, ईश्वर की भाँति अपने आत्मा को भी ज्ञानस्वभाव से और पर के अकर्तास्वभाव से जाने तो जीव को स्वपर का भेदज्ञान हो; और इस भेदज्ञान के बल से राग-द्वेष का सम्पूर्ण नाश करके तथा अपने ज्ञान को पूर्णतया विकसित करके जीव स्वत: ही ईश्वर हो जाये। इसप्रकार ईश्वर की और आत्मा के स्वरूप की यथार्थ आस्तिकता का फल सच्चा ईश्वरत्व है।

जो ईश्वर को पर का कर्ता या रागी मानते हैं, वे अवश्य अपने को भी पर का कर्ता और रागी मानते हैं, इससे वे पर के कर्तृत्व के अहंकार में अटके रहते हैं, और पर के कर्तृत्व के अहंकार से रहित जो अपना ज्ञानस्वभाव है, उसे वे नहीं मानते। ज्ञानस्वभावी आत्मा के अस्तित्व का अस्वीकार, सो परमार्थ से नास्तिकता है।

और, इस जगत की समस्त परवस्तुएँ स्वतंत्र हैं, सब स्वत: अपने से ही स्वतंत्ररूप से स्थित रहनेवाली हैं, प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूप के स्वतंत्र अस्तित्वरूप से स्थित रहकर अपना कार्य

स्वत: करता है, तथापि उसके स्वतंत्र अस्तित्व को न मानना, और ईश्वर उसका कर्ता है, अथवा मैं उसका कर्ता हूँ—ऐसा मानना भी नास्तिकता है।

वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है कि एक वस्तु का दूसरी वस्तु में अकर्तृत्व ही है। वस्तु अपने स्वरूप से अस्तित्वरूप है और अन्य से वह नास्तित्वरूप है। अर्थात् प्रत्येक पदार्थ सम्पूर्णरूप से पृथक्-पृथक् है। ऐसा होने से एक पदार्थ दूसरे पदार्थ का अकर्ता ही है। जिसप्रकार सर्वज्ञ ईश्वर पर में अकर्ता हैं, वैसे ही जगत के सभी जीव पर में अकर्ता हैं। ऐसा स्वतंत्रवाद जगत के पदार्थों में प्रवर्तमान है। विश्व के समस्त पदार्थों के स्वतंत्र अस्तित्व को जानना ही आस्तिकता है।

प्रश्न—सब मिलकर एक ही आत्मा है, अर्थात् सभी आत्मा एक ईश्वर के ही अंश हैं - ऐसा मानकर अस्तिकता है या नास्तिकता ?

उत्तर—यह मान्यता नास्तिकतारूप है।

प्रश्न—इसमें आत्मा के अस्तित्व को तो स्वीकार किया है, फिर भी नास्तिक क्यों है ?

उत्तर—वास्तव में उसमें यथार्थस्वरूप से आत्मा का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया है। इस जगत में अनंतानंत आत्मा हैं, और वह प्रत्येक आत्मा स्वत: परिपूर्ण अखण्ड है। ऐसा होने पर भी, सब मिलकर एक ही आत्मा है—ऐसा जिसने माना है, उसने किसी भी आत्मा के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया है; अनंत परिपूर्ण आत्मा हैं, उन्हें नहीं माना है। प्रत्येक आत्मा पूर्ण है, उसे अनंतवें भाग से माना—इसप्रकार वह नास्तिक ही सिद्ध होता है। इस जगत में प्रत्येक-प्रत्येक जीव और प्रत्येक-प्रत्येक जड़ वस्तु स्वतंत्र प्रत्येक वस्तु स्वत: से ही परिपूर्ण अस्तित्व रखती हैं, कोई भी वस्तु किसी अन्य वस्तु के आधार से स्थिर नहीं रहती—ऐसा जानना-मानना ही सच्ची आस्तिकता है। ऐसे आस्तिक को ही धर्म और मुक्ति होती है।

वास्तव में तो, जिसप्रकार अपने परिपूर्ण शुद्धात्मस्वरूप का अस्तित्व है, उसीप्रकार जानकर जो स्वीकार करे, वही सच्चा अस्तिक है। जो भेदज्ञान द्वारा शुद्धात्मा के स्वरूप को नहीं जानता, वह अवश्य ही कहीं अन्यत्र आत्मा का अस्तित्व मानता है। आत्मा के अस्तित्व को न जाने और उसे अन्य प्रकार से माने तो वह भी नास्तिकता है। आत्मा के यथार्थ स्वरूप को सम्यग्दृष्टि ज्ञानी ही जानते हैं, इससे वे ही सच्चे आस्तिक हैं। मिथ्यादृष्टि जीव आत्मा के स्वरूप को यथार्थ रीति से नहीं जानते, इससे वे परमार्थ से नास्तिक हैं।

इसप्रकार जगत का प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र, स्वयंसिद्ध, किसी से भी अनिर्मित और परिपूर्ण है; जगत में अनंत आत्माएँ हैं, उनमें प्रत्येक स्वतंत्र है। कोई भी आत्मा अपने स्वरूप की पूर्णता को जानकर उसमें एकाग्रता द्वारा अपनी चैतन्यशक्ति का विकास करके स्वतः ही ईश्वर हो सकता है—ऐसा जाननेवाला ही आस्तिक है, और दूसरे वास्तव में नास्तिक हैं।

प्रश्न—यदि ईश्वर इस जगत का कर्ता नहीं है तो जगत की यह सब व्यवस्था कैसे चलती है?

उत्तर—इस जगत में जितने पदार्थ हैं, वे स्वतः अपने स्वभाव से ही व्यवस्थितरूप से परिणमन करते हैं; कोई पदार्थ कभी भी अव्यवस्थित परिणमित होता ही नहीं; कोई पदार्थ कभी अपने स्वरूप से च्युत नहीं होता। जैसे गेहूँ को बोने से गेहूँ ही उगते हैं किंतु गेहूँ में से बाजरा नहीं उगता, उसीप्रकार जीव सदैव जीवरूप रहकर ही परिणमन करता है, किंतु वह परिणमित होकर जड़ नहीं हो जाता। पदार्थ स्वतः अपने स्वभाव से अपने मूलस्वरूप में स्थित रहते हैं। वैसे ही जड़ पदार्थ परिवर्तित होकर कभी जीवरूप नहीं हो जाते। जीव कभी अपना जीवत्व नहीं छोड़ता और जड़ कभी अपनी जड़ता नहीं छोड़ता।

समस्त पदार्थों में उत्पादव्ययध्रुवत्व नाम की शक्ति है, इससे सभी पदार्थ अपने स्वभाव से ही नवीन-नवीन अवस्थारूप उत्पन्न होते हैं; पुरानी-पुरानी अवस्थाओं का नाश होता है और पदार्थ अपने मूलस्वरूप से सदा स्थित रहता है। इसप्रकार प्रत्येक पदार्थ में व्यवस्थित परिवर्तन (उत्पाद-व्यय) होता ही रहता है; कोई ईश्वर उस परिवर्तन का कर्ता नहीं है, किंतु पदार्थ अपने स्वभाव से ही वैसे हैं। उत्पादस्वभाव वस्तु में कुछ न कुछ नवीन कार्य की उत्पत्ति करता है; व्ययस्वभाव वस्तु के पुराने कार्य का नाश करता है और ध्रुवस्वभाव वस्तु को उसके मूलस्वरूप में सदैव स्थित रखता है। सभी वस्तुओं में स्वभाव से ही इसप्रकार होता रहता है। वस्तुस्वभाव स्वतः ही अपना ईश्वर है। ऐसे यथार्थ वस्तुस्वभाव को जानकर पर के कर्तृत्व का अभिप्राय छोड़ना और ज्ञातारूप से रहना ही धर्म है। उसी में सुख-शांति है, वही परमात्मा होने का उपाय है।

पुरुषार्थ की भनभनाहट

(चर्चा से)

ज्ञानस्वभाव के आदर के अतिरिक्त अन्य बात नहीं सुनना चाहिये। कर्म आत्मा को हैरान करते हैं—ऐसी पुरुषार्थ हीनता की बात नहीं सुनना चाहिये। जैसे—स्वयं पुरुष हो, लेकिन कोई कहे कि 'तू पुरुष नहीं किंतु नपुंसक है'—तो वहाँ कितने जोश में आकर विरोध करता है! जो पुरुष हो, वह नपुंसकता की बात नहीं सुन सकता। अंतर से भनभनाता हुआ अस्वीकार आता है। उसीप्रकार यहाँ पुरुषार्थवान ऐसा भगवान आत्मा पुरुष है; उससे कोई कुगुरु कहें कि 'कर्म और काल तेरे पुरुषार्थ को रोकते हैं'—तो ऐसा कहनेवाले ने आत्मा को पुरुषार्थहीन-नपुंसक कहा है। पुरुषार्थी-आत्मार्थी जीव ऐसी बात नहीं सुन सकता; उसका आत्मा पुरुषार्थ हीनता की बात सहन नहीं कर सकता; अंतर से नि:शंक विरोध उठता है। उससमय उसे ऐसा नहीं लगता कि—'शास्त्र में क्या कहा होगा - उसे पहले देख लूँ।' जिसके आत्मा में मोक्ष के पुरुषार्थ की भनभनाहट जागृत हुई है, वह पुरुषार्थ हीनता की बात नहीं सुन सकता। 'कर्म पुरुषार्थ को रोकते हैं, अथवा चाहे जितना पुरुषार्थ करने पर भी मुक्ति नहीं होती'—ऐसा कथन जो करते हों, वे शास्त्र मिथ्या, गुरु मिथ्या, वह सम्प्रदाय मिथ्या।—ऐसे कुगुरु-कुशास्त्र अथवा कुमार्ग का धर्मी जीव आदर नहीं करते; नि:शंकरूप से उनकी श्रद्धा छोड़ देते हैं।

जिसके हृदय में सर्वज्ञ विराजमान हैं, जिसने पुरुषार्थ द्वारा केवली भगवान के केवलज्ञान का निर्णय किया है, उस पुरुषार्थी जीव के अनंत भव भगवान ने देखे ही नहीं हैं। सर्वज्ञ का निर्णय करने के पुरुषार्थ द्वारा जिसका आत्मा भनभना उठा है, वह जीव 'पुरुषार्थ द्वारा भव का नाश नहीं होता'—ऐसी पुरुषार्थहीनता की बात नहीं सुन सकता; उसे ऐसा लगेगा कि अरे! ऐसी पुरुषार्थहीनता की बात जगत के किसी जीव को सुनने के लिये न मिले!

सत् अर्थात् आत्मा का वास्तविक स्वभाव; जिस क्षण उसे पहिचाने, उसी क्षण उसका आदर हो और असत् का आदर छूट जाये। 'इस समय इतने प्रतिकूल संयोग हैं कि सत् की बात मानेंगे और असत् को छोड़ देंगे तो प्रतिकूलता आ जायेगी और लोग पागल कहेंगे; इसलिये इस समय यह बात प्रगट नहीं करना चाहिये—ऐसा जो मानता है, वह संयोग की अनुकूलता के लिये

आत्मा को बेच डालता है; उसे आत्मा की यथार्थ महिमा भासित नहीं हुई है; उसने सत् को नहीं पहिचाना है; उसे आत्मा का प्रेम नहीं है किंतु संयोग का प्रेम है; इसलिये वह पुरुषार्थ हीनता की बातें करता है। जिसे आत्मा का प्रेम जागृत हुआ है... पुरुषार्थ का रंग लगा है... जिसे सत् की महिमा भासित हुई है, उसे तो ऐसा लगता है कि अरे! तीन काल तीन लोक भले एकसाथ प्रतिकूल हो जायें, तथापि मैं अपने स्वभाव की रुचि कैसे छोड़ सकता हूँ? जगत भले ही पागल कहे, किंतु मैं सत् को छोड़कर असत् का आदर कैसे कर सकता हूँ? संयोग के लिये स्वभाव को कैसे बेच सकता हूँ? अज्ञानी मूढ़ जीवों का स्वभाव तो सत् का विरोध और निंदा करने का है; अपने विपरीत स्वभाव को वे अज्ञानी नहीं छोड़ते; तो मैं अपने सच्चे स्वभाव को क्यों छोड़ूँ? स्वभाव को किसी संयोग की अथवा सहायता की आवश्यकता नहीं है। आत्मार्थी जीव को स्वभाव की बात सुनकर पुरुषार्थ करने का जोश आता है, किंतु अज्ञानी-मूढ़ जीव पुरुषार्थहीन नपुंसक हैं; उन्हें स्वभाव की बात सुनकर जोश नहीं आता। पुरुषार्थी जीव तो स्वभाव की बात सुनकर उछल पड़ते हैं कि वाह! हमारा ऐसा स्वभाव!! उसे तो अब प्राप्त करना ही होगा... हमारे पुरुषार्थ को जगत में कोई नहीं रोक सकता.. अब हमारे पुरुषार्थ में विघ्न हैं ही नहीं।

जिसे आत्मा की रुचि का ऐसा पुरुषार्थ जागृत हुआ, वह जीव सत्स्वभाव से विरुद्ध बात को स्वीकार नहीं करता। लाखों या करोड़ों लोग एकत्रित होकर विरोध करें, तथापि वह अपने पुरुषार्थ से विचलित नहीं होता... सत्य की दृढ़ता नहीं छोड़ता... पुरुषार्थ द्वारा स्वभाव की रुचि का जो पानी चढ़ गया है, अब वह नहीं उतरेगा अल्पकाल में वह अपना कार्य पूर्ण करके ही रहेगा।

परम शांतिदायिनी
अध्यात्म-भावना

भगवान श्री पूज्यपाद स्वामी रचित 'समाधिशतक' पर परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के अध्यात्म भरपूर वैराग्य प्रेरक प्रवचनों का सार

[वीर संवत् २४८२, अषाढ़ शुक्ला १३ शुक्रवार]

(अंक २०८ से आगे)

ज्ञानी अंतरात्मा अपने आत्मा को निरंतर शरीर से भिन्न ही देखता है-ऐसा कहा। अब, वहाँ कोई प्रश्न पूछे कि—यदि अंतरात्मा स्वयं अपने आत्मा का ऐसा अनुभव करते हैं तो मूढ़ आत्माओं को उसका प्रतिपादन करके क्यों नहीं समझा देते—कि जिससे वे अज्ञानी भी उसे जान लें!—यदि स्वयं समझ गये तो दूसरे को भी क्यों नहीं समझा देते? उसके उत्तर में आचार्यदेव पूज्यपादस्वामी कहते हैं कि:—

अज्ञापितं न जानन्ति यथा मां ज्ञापितं तथा।
मूढात्मानस्ततस्तेषां वृथा मे ज्ञापनश्रमः ॥५८॥

जिन्होंने शरीरादि से भिन्न आत्मस्वरूप को जाना है—ऐसे अनुभवी धर्मात्मा विचार करते हैं कि—अहो! यह अचिंत्य आत्मतत्त्व जगत को दुर्लभ है, वचन और विकल्प से वह पार है।—ऐसे स्वानुभवगम्य चैतन्यतत्त्व को मूढ़ जीव जिसप्रकार मेरे बतलाये बिना नहीं जानते, उसीप्रकार मेरे बतलाने से भी वे नहीं जानते; इसलिये दूसरे को समझाने का मेरा श्रम (-विकल्प) व्यर्थ है।

तीर्थंकर तो समवसरण में समानरूप से धारावाही उपदेश देकर समझाते थे, तथापि सब जीव नहीं समझे; जिनकी योग्यता थी, वे ही समझ पाये। जब तीर्थंकर के उपदेश से भी वे जीव नहीं समझे, तब मुझसे तो क्या समझेंगे? मेरे प्रतिपादन करने से भी वे मूढात्मा आत्मस्वरूप को नहीं जान सकते; इसलिये दूसरों को समझाने का मेरा श्रम व्यर्थ ही है। सामनेवाले जीव की योग्यता

के बिना किसी की शक्ति नहीं जो उसे समझा सके! धर्मी को उपदेशादि का विकल्प उठता है, किंतु उस विकल्प को भी वे वृथा ही मानते हैं; ऐसा नहीं मानते कि मेरे विकल्प द्वारा दूसरा समझ जायेगा। इसलिये विकल्प पर जोर नहीं है किंतु उस विकल्प को भी तोड़कर चिदानंदस्वरूप में ही स्थिर होना चाहते हैं।

आत्मा के ज्ञानानंदस्वरूप में रहना ही समाधि है; दूसरे को समझाने का जो विकल्प उठता है, वह राग है; उस राग द्वारा भी बंधन होता है; इसलिये ज्ञानी उस राग पर भार नहीं देते। अन्य कोई जीव मुझसे नहीं समझ सकते। अज्ञानी जीव स्वयं आत्मा को नहीं जानते। और मेरे कहने से भी नहीं जानते; वे जब स्वयं अज्ञान को दूर करके ज्ञान करेंगे, तब आत्मा को जानेंगे।—ऐसा अभिप्राय तो ज्ञानी का पहले से ही है और तदुपरांत उपदेशादि शुभवृत्ति को भी असमाधिरूप जानकर छोड़ना चाहते हैं तथा चिदानंदस्वरूप में ही स्थिर होना चाहते हैं।

ज्ञानी को अपने स्वानुभव से आत्मज्ञान हुआ है, उसमें वे निःशंक हैं। जगत माने तभी अपनी बात सच्ची और जगत न माने तो अपनी बात मिथ्या—ऐसा नहीं है। जगत के अज्ञानी न समझें तो उससे मुझे क्या? ज्ञानी को ऐसी शंका या पराश्रयबुद्धि नहीं होती कि—मैं दूसरे को समझा दूँ, तब मेरा ज्ञान सच्चा अथवा दूसरे मुझे मानें, तब मेरा ज्ञान सच्चा। उनके अंतर में से तो आत्मा की साक्षी आ गई है। और ज्ञानी ने जान लिया है कि—अहो! यह चैतन्यतत्त्व तो स्वसंवेदनगम्य ही है; किसी वाणी या विकल्प द्वारा वह ज्ञात नहीं होता; इसलिये जब दूसरे अज्ञानी जीव स्वयं अंतर्मुख होकर समझेंगे, तभी आत्मस्वरूप उनकी समझ में आयेगा। ज्ञानी उपदेश दें, वहाँ अज्ञानी को ऐसा लगता है कि—'यह ज्ञानी बोलते हैं, ज्ञानी राग करते हैं'—इसप्रकार वह वाणी तथा राग से ही ज्ञानी को जानता है, किंतु ज्ञानी का स्वरूप तो राग से और वाणी से पार अकेला ज्ञानानंदमय है, उसे वह नहीं जानता।

दूसरे स्वीकार करें तो मेरा सच्चा—ऐसी शंका ज्ञानी को नहीं है, तथा मैं दूसरों को समझा दूँ—ऐसी बुद्धि भी ज्ञानी को नहीं है; इसलिये वे तो जानते हैं कि—दूसरों को समझाने का मेरा विकल्प वृथा है। स्वयं भाषा का अवलम्बन तोड़कर चैतन्योन्मुख हुए, तब आत्मा को समझा और दूसरे जीव भी भाषा का अवलम्बन छोड़कर अंतर्मुख होंगे, तभी समझेंगे–मुझसे नहीं रुकते। ऐसा जानने के कारण ज्ञानी को दूसरों के समझाने का आग्रह नहीं होता। अज्ञानी जीव कभी सभा में उपदेश दे रहा हो और बहुत से लोग सुन रहे हों, वहाँ उत्साह आ जाता है कि मैंने अनेक जीवों को

समझाया। लेकिन उसे यह खबर नहीं है कि—अरे, मैं तो इस विकल्प और वाणी—दोनों से पार मैं ज्ञायकस्वरूप हूँ और दूसरे जीव भी वाणी तथा विकल्प से पार ज्ञायकस्वरूप हैं; वे वाणी या विकल्प द्वारा ज्ञायकस्वरूप को नहीं समझ सकते। देखो, यह ज्ञानी का भेदज्ञान! उपदेश द्वारा मैं दूसरों को समझा सकता हूँ—ऐसा ज्ञानी नहीं मानते; उनको तो चैतन्य का चिंतन तथा एकाग्रता ही परम प्रिय है।—ऐसी अध्यात्म-भावना ही परम शांतिदायिनी है और उसका नाम समाधि है।

सम्यक्त्वी छोटा बालक हो तो वह भी राग से और शरीरादि से पार अपना स्वरूप जानता है; इसलिये वह शरीरादि की क्रिया से तथा राग से उदासीन ही रहता है। जिन मूढ़ जीवों में योग्यता नहीं थी, वे तो साक्षात् सर्वज्ञदेव के उपदेश से भी नहीं समझ सके। अहो, अंतर का यह ज्ञानतत्त्व!! वह मैं दूसरों को कैसे बतलाऊँ? वह तो स्वसंवेदन का ही विषय है।—ऐसी प्रतीति होने से उन्हें जड़बुद्धि जीवों को समझा देने का आग्रह नहीं होता; जड़बुद्धि-मूढ़ जीवों के साथ वाद-विवाद करना उन्हें व्यर्थ मालूम होता है, इसलिये वे तो स्वयं अपना आत्महित साधने में ही तत्पर हैं... आत्महित का साधन ही उनका मुख्य विषय है—उपदेशादि की वृत्ति को वे मुख्यता नहीं देते।

प्रश्न : ज्ञानी भी उपदेश तो देते हैं?

उत्तर : भाई, ज्ञानी अपने ज्ञानानन्दस्वरूप के अतिरिक्त एक विकल्प के भी कर्ता नहीं हैं और न भाषा के ही कर्ता हैं। किंचित् विकल्प आने पर उपदेश निकलता है, किंतु उस समय ज्ञानी को तो अपने चैतन्यतत्त्व की ही भावना है—ऐसी ज्ञानी की अंतरभावना को तू नहीं जानता, क्योंकि वाणी से और राग से पार ऐसे चैतन्यतत्त्व की तुझे खबर नहीं है। विकल्प और वाणी के चक्कर में ज्ञानी कभी चैतन्य को नहीं चूकते॥५८॥

✦✦✦

पुनश्च, विकल्प उठने पर ज्ञानी-अंतरात्मा ऐसा विचार करता है कि—

यद् बोधयितुमिच्छामि तन्नाहं यदहं पुनः।
ग्राह्यं तदपि नान्यस्य तत्किमन्यस्य बोधये॥५९॥

मैं जिसे समझना चाहता हूँ, वह विकल्पारूढ़ आत्मा या शरीरादिक मैं नहीं हूँ; वाणी में तो विकल्प से और भेद से कथन आता है, उससे कहीं आत्मा पकड़ में नहीं आता; इसलिये वाणी और विकल्प द्वारा मैं क्या समझाऊँ? जो स्वसंवेदनगम्य आत्मतत्त्व है, वह दूसरे जीवों को वाणी से या विकल्प से ग्राह्य नहीं है, तो फिर उन्हें मैं कैसे समझाऊँ?

—इसप्रकार तत्त्वज्ञानी अंतरात्मा विकल्प की और भाषा की व्यर्थता समझते हैं कि—अरे, जिस आनन्द का अनुभव मुझे हुआ है, वह मैं दूसरों को शब्दों द्वारा कैसे बतलाऊँ? विकल्प भी आत्मा के स्वरूप में नहीं है। आत्मा का शुद्ध आनन्दस्वरूप विकल्प में या शब्दों में नहीं आ सकता; वह तो स्वसंवेदन में ही आता है, इसलिये अन्य जीवों को उपदेश देने का मुझे क्या प्रयोजन है? इसप्रकार धर्मात्मा, विकल्प की ओर का उत्साह छोड़कर चैतन्यस्वभाव में सावधानी तथा उत्साह बढ़ाता है और उसमें एकाग्रता करता है।

देखो, ऐसे भानपूर्वक ज्ञानी का उपदेश कुछ अलग प्रकार का ही होता है; वे आत्मा को अंतर्मुख होने के लिये ही कहते हैं। बहिर्मुख वृत्ति में आत्मा को किंचित् लाभ नहीं है; इसलिये वाणी और विकल्प का अवलम्बन छोड़कर परम महिमापूर्वक चैतन्यतत्त्व का ही अवलम्बन करो... ऐसा ज्ञानी कहते हैं। ज्ञानी होने के पश्चात् उपदेशादि का प्रसंग आता ही नहीं—ऐसी बात नहीं है; किंतु उन उपदेशादि में ज्ञानी को ऐसा अभिप्राय नहीं है कि मुझसे कोई समझ लेगा! अथवा इस विकल्प से मेरे चैतन्य को लाभ होगा—ऐसा भी वे नहीं मानते। ज्ञानी जानते हैं कि—बहिरात्मा तो पराश्रयबुद्धि की मूढ़ता के कारण अंतरोन्मुख नहीं होते, इसलिये मेरे समझाने से भी वे आत्मस्वरूप को नहीं समझेंगे। जब वे स्वयं पराश्रयबुद्धि छोड़कर, अंतर्मुख होकर, स्वसंवेदन करेंगे, तभी प्रतिबोध प्राप्त कर सकते हैं।

बहिर्बुद्धिवाले अज्ञानी जीवों को किंचित् ज्ञान होने पर ऐसा लगता है कि—हम दूसरों को समझा दें! और जब अधिक लोग सुननेवाले हों तो मानते हैं कि—बहुत धर्म हो गया!—इसप्रकार अकेली वाणी और विकल्प पर उनका जोर जाता है; किंतु वाणी और विकल्प से पार आत्मा के ऊपर भार नहीं देते। जगत के अन्य मूढ़ जीव भी उसकी भाषा पर मोहित हो जाते हैं और कहते हैं कि कितना महान धर्मात्मा है, लेकिन इसप्रकार धर्मात्मा का माप नहीं निकलता। कोई महान धर्मात्मा आत्मानुभवी हो, तथापि वाणी का योग अति अल्प होता है। मूक केवली को केवलज्ञान होने पर भी वाणी का योग नहीं होता और किसी धर्मात्मा को वाणी का योग हो तथा उपदेश की वृत्ति भी उठे, परंतु उपदेश की वृत्ति पर उनका जोर नहीं है; मेरे उपदेश से दूसरा समझ जायेगा—ऐसा अभिप्राय नहीं है। अरे, अतींद्रिय और शब्दातीत ऐसा चैतन्यतत्त्व, वाणी द्वारा कैसे बतलाया जा सकता है? इसप्रकार चैतन्य की महत्ता जिसने नहीं जानी, उसी को ऐसा भ्रम होता है कि वाणी या विकल्प द्वारा चैतन्यतत्त्व समझ में आ जायेगा। किंतु भाई, चैतन्य के अनुभव में वाणी

का प्रवेश नहीं है; विकल्प का भी प्रवेश नहीं है। श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं कि—

"नहिं दे तू उपदेश को प्रथम लेहि उपदेश,
सबसे न्यारा अगम है वो ज्ञानी का देश॥"

कुछ लोगों का शास्त्र पढ़ते या सुनते समय अंतर में ऐसा अभिप्राय होता है कि—यह बात समझकर, धारणा में लेकर दूसरों को समझा दूँ। अरे, सत् को समझकर चैतन्योन्मुख होने का अभिप्राय नहीं है, किंतु दूसरों को समझाने का अभिप्राय है; इसलिये शास्त्र पढ़ते या सुनते समय भी वह अपनी बहिर्मुख वृत्ति का ही पोषण करता है। अहा! यहाँ तो धर्मात्मा की कैसी उच्च भावना है! जगत से उदास होकर चैतन्य में ही समा जाना चाहते हैं। मुझे जगत से क्या मतलब? और चैतन्यतत्त्व भी इतना गहरा-गंभीर है कि वाणी द्वारा दूसरों को नहीं समझाया जा सकता और कदाचित् वाणी के निमित्त से अन्य जीव समझें तो वह वाणी मैं नहीं हूँ, तथा सामनेवाला जीव भी उस वाणी का अवलंबन रखकर नहीं समझा है, किंतु वाणी का अवलंबन छोड़कर चैतन्योन्मुख होने पर ही समझा है।—इसप्रकार वाणी और विकल्प तो व्यर्थ हैं—ऐसा जानकर, धर्मी जीव निजस्वरूप में ही रहना चाहता है। दूसरे को समझाने का विकल्प या दूसरे से सुनने का विकल्प—वे सब विकल्प, चैतन्यस्वरूप से बाह्य हैं। विकल्पों द्वारा चैतन्यस्वरूप ग्राह्य नहीं है; वह तो स्वसंवेदन ग्राह्य है। भगवान की दिव्यध्वनि भी तभी धर्म का निमित्त होती है कि जब जीव अंतर्मुख होकर स्वसंवेदन करे। ऐसे स्वसंवेद्य तत्त्व का प्रतिबोध मैं दूसरों को कैसे दूँ? बाह्य चेष्टा में मैं किसलिये रुकूँ? वाणी और विकल्प तो चैतन्यस्वरूप में प्रविष्ट होने के लिये व्यर्थ हैं—ऐसा जानकर धर्मी जीव निजस्वरूप की भावना में ही तत्पर रहता है। ऐसी अध्यात्म भावना परम शांतिदायिनी है।●

परमात्मराजा के सम्यक्त्व फौजदार का वर्णन

चिदानंदभूपाल की राजधानी में पवित्र गुण-पर्यायों का विलासदर्शक

श्री परमात्मपुराण

[गतांक नं० २०७ से आगे]

सम्यक्त्व फौजदार :—आत्मा के संख्य प्रदेशों में समस्त अनंत गुणरूपी प्रजा स्वक्षेत्र में व स्वस्थान में व्याप्त है। उस प्रजा का सम्यक्त्व नामक फौजदार सम्यक् प्रकार रक्षा करता है। उस गुणरूपी प्रजा के जो प्रतिकूल हो, उसको अपने अन्दर प्रवेश नहीं करने देता, इसलिये किसी की सरजोरी या चोरी नहीं चलती। ज्ञान का प्रतिकूल जो अज्ञान कि जिसके कारण संसारी जीव अंधे होकर डोलते हैं, निजतत्त्व को नहीं जानते; स्वरूप से भिन्न पर को हेय न जानकर पर को स्व मान-मानकर मोह वैरी को प्रबल करके अपनी शक्ति मंद करके चौरासी लाख योनिरूप परदेशों में (परप्रदेशों में) अनादि काल से भटकते हैं। स्थिरता, शांति लेशमात्र भी नहीं पाते, ऐसी अज्ञानता की महिमा उसको यह सम्यक्त्व फौजदार अपने देशों में अंश मात्र भी प्रवेश नहीं करने देता। दर्शनावरणी के वश होकर जीव अपने स्वरूप का दर्शन न करके उसके कारण पर को देखने में वर्तता है। वहाँ आत्मा रति मानता है, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि नामक दर्शनावरण के मित्र प्रमादरूपी चोर आत्मजागृति को आवरण करता है, सो स्वरूप दर्शन कैसे करने दे। इसलिये वे स्वरूप दर्शन के घातक हैं, ऐसे प्रतिकूलों को सम्यक्त्व फौजदार प्रवेश नहीं करने देता।

मोह, सम्यक्त्व का घातक, अनंत सुख का घातक, स्वरूपाचरणचारित्र का घातक है, इस मोह ने जगत के जीवों को बहिर्मुख कर रखा है। पर के फंदे में डालकर व्याकुल करके आस्रवरूप अनात्मा के अभ्यास द्वारा दुःखी किया है, साम्यभाव—अमृतरस चाखने नहीं देता। अतत्त्व में श्रद्धा, रुचि, प्रतीति करके मानी बन रहा है, पर पद का अभिमानी राग से उन्मत्त, पद पद पर, प्रत्येक डग डग पर पर्याय पर्याय में नयी स्वच्छन्दता को धारण करता है। इन संसारी जीवों को विषय कषाय से व्याप्यव्यापकता-कर्ताकर्मपणारूप अशुद्धता द्वारा संसार वास उस मोह ने कराया

है। मोह की महिमा से शरीरादि अनित्य को अपना माने, भला-बुरा मानता है, मोह में शरीरादि में परम प्रेम करके सुख दु:ख मानता है, मोह की कल्पना ऐसी है जो अनंत ज्ञान के स्वामी को भुलाकर रखता है, ऐसे प्रतिकूल स्वभाववाले मोह को वैरी जानकर सम्यक्त्व फौजदार अंदर आने नहीं देता। परमात्मराजा (शुद्धात्मस्वभावी स्वद्रव्य) की आन-आज्ञा ऐसी मानते हैं। वेदनीय कर्म द्वारा संसारी मोहवान् जीव साता असाता पाते हैं, वहाँ सुख-दु:ख वेदते हैं, हर्ष-शोक मान मानकर महा पर वश होते स्वरूप का अनुभव नहीं कर सकते। पर के स्वाद में रस मानते हैं, किंतु परमात्म राजा की राजधानी का रक्षक सम्यक्त्व फौजदार ऐसे प्रतिकूलों को अंदर नहीं आने देता है।

नामकर्म की रचना द्वारा नाना विचित्रता है, कोई देवनाम, नरनाम, नारकनाम, तिर्यंच-(पशु) नाम, गति जाति आदि नाम, शरीरादि नाम अनेक नाम हैं, उसको धारण करता है, उसके वश संसारी जीव अपने सूक्ष्म गुण को प्राप्त नहीं होता किंतु ऐसे प्रतिकूली को सम्यक्त्व फौजदार अंदर प्रवेश नहीं होने देता।

ऊँच-नीच गोत्रकर्म के उदय से ऊँच-नीच गोत्र संसारी धारण करते हैं; इसलिये अगुरु-लघुगुण (प्रतिजीवी अगुरुलघुत्वगुण) को प्राप्त करता नहीं, ऐसा कर्म का प्रवेश वह नहीं होने देता।

चार प्रकार के आयुकर्म, पांच प्रकार के अंतरायकर्म को सम्यक्त्व फौजदार नहीं आने देता। रागादि भावकर्म तथा शरीरादि नोकर्म का प्रवेश न हो सके, ऐसा सम्यक्त्व का तेज है। परमात्माराजा की राजधानी यथावत् जैसी है तैसी रखता है। परमात्माराजा के जितने गुण हैं, उतने शुद्ध इस सम्यक्त्व से हैं। इसलिये उसको ऐसा काम सौंप दिया है।

[आत्मद्रव्य के स्वभावभूतध्रौव्य, व्यय, उत्पाद से आलिंगित (स्पर्शित) सदृश और विसदृश जिसका रूप है, ऐसा एक अस्तित्वमात्रमयी परिणामशक्ति (गुण) समयसारजी शास्त्र में ४७ शक्तियों का वर्णन है, उसमें यह परिणामशक्ति नामक गुण का परमात्मराजा के नगर की प्रजा के रक्षक के रूप में वर्णन-]

अब परिणाम कोटवाल (नगर रक्षक) का वर्णन

परिणाम कोटवाल मिथ्यात्वरूप पर परिणाम चोर को प्रवेश नहीं करने देता। परपरिणाम नामक चोर कौन है, सो कहते हैं—जो अपने स्वरूपरूप परिणाम के द्रोही हैं, पररूप को धुंके हैं (परपरिणाम में झुकाव करता है) पर पद का निवास पाकर आत्मनिधि रूपी रत्न को चुराने के लिये चतुर है। मिथ्यात्व रागादिरूप अवस्था को अनाकुल सुख का संबंध जिसको कभी भी नहीं हुआ।

पर रस के रसिया हैं। वे भाव कैसे हैं ? भववासी संसारी जीव के लिये अत्यंत कठिन है तो भी प्रिय लगता है, बंधन का कर्ता है, विनाशीक है, पराधीन है, अनादि सादि परिणामिकता सहित है, परम्परा अनादि है। इसप्रकार परभावरूप परिणाम का प्रवेश परिणाम कोटवाल नहीं होने देता। उस परिणाम कोटवाल ने परमात्म राजा के देश की प्रजा की हर समय संभाल की है, उसका बड़ा यत्न है, उसे परमात्मा राजा ने एक स्वरूप रूप अनंत गुणों की रक्षा के लिये अधिकार सोंपा है।

उससे हमारे देश की (आत्मद्रव्य की) सम्पूर्ण शुद्धता है। तब ऐसा जानकर गुण प्रजा की और राजा की हर समय सम्भाल करता है, सब गुणों के घरों में प्रवेश करके उनके निधान को सिद्ध करके प्रत्यक्ष उसका प्रभाव प्रगट करता है। इस कोटवाल में ऐसी शक्ति है कि जो जरा भी वक्र होय तो राजा का सब पद अशुद्ध होकर संसारी की तरह शक्ति मंद हो जाये, इसलिये परिणाम कोटवाल संपूर्ण पद को शुद्ध रखता है। परिणाम के आधीन राजपद है, इसलिये परम रक्षा करनेवाला कोटवाल है। उस परिणाम कोटवाल में ऐसी शक्ति है जो सब राज को, राजा की गुणरूपी प्रजा को, मंत्री को, फौजदार को अपनी शक्ति में मिलाकर विद्यमान रखता है। सब गुण अपनी महिमा को उससे ही धारण करते हैं, उसके द्वारा (परिणाम कोटवाल द्वारा) उसका (आत्मा का) सर्वस्व है, ऐसा परिणाम कोटवाल परमात्मपद का कारण है, इसलिये उसमें अपार शक्ति है।

परमात्म राजा का वर्णन

परमात्म राजा अपनी चैतन्य परिणतिरूपी स्त्री से रमता है। कैसी है चेतना परिणति ? महा अनंत, अनुपम, अनाकुल अबाधित सुख को देती है। परमात्म राजा से मिल-मिलकर एक रस होती है, और परमात्म राजा अपने अंग से मिलाकर एकरूप करता है।

प्रश्नः—जो परिणति प्रतिसमय दूसरी दूसरी होती है, इसलिये परमात्म राजा के अनंत परिणति हुई, तब अनंत परिणतिरूपी स्त्री कहना चाहिये ?

उत्तरः—परमात्म राजा एक है, परिणति शक्ति भविष्य काल में प्रगट दूसरी-दूसरी होने की है, परंतु वर्तमान काल में व्यक्तरूप परिणति एक है, वह ही उस राजा को रमाती है, जो परिणति वर्तमान की है, उसको राजा भोगता है, वह परिणति समयमात्र आत्मिक अनंत सुख देकर आत्मद्रव्य में विलय हो जाती है, परमात्मा में लीन होती है, जैसे देव के एक देवांगना विलय हुई, तब उसके स्थान में दूसरी उत्पन्न हो जाती है, उससे देव भोग करता है, परंतु यहाँ तो यह विशेषता है कि उसकी देवांगना बहुत काल रहे, किंतु परिणति स्त्री तो एक समय मात्र रहे और वह देवी विलय

होकर अन्य स्थान में उपजे, परंतु यह परिणति उस रूप ही में समाती है। इसप्रकार परमात्मराजारूप आत्मद्रव्य में परिणाम शक्ति अनंत पर्याय शक्ति सहित है, वह वर्तमान व्यक्त प्रगट अपेक्षा-वर्तमान अपेक्षा एक है, अनंत रस को करती है, स्वरूप को वेदकर-स्वाद में आकर अंतर में मिलकर स्वरूप निवास करके फिर दूसरे समय में उत्पन्न होती है, स्वरूप के शरीर में प्रवेश करके सुख देकर अंतरलीन परिणति मिल जाती है, फिर उत्पन्न होकर दूसरे समय में फिर सुख देती है, फिर उत्पन्न होकर स्वरूप सुख का लाभ दे देकर पूर्व पर्याय के व्यय द्वारा स्वरूप में निवास कर ध्रुवता को पोषकर (पुष्टकर) आनन्द पुंज को प्राप्त करके स्वरस की प्रवृत्ति करनेवाली कामिनी हर समय नये-नये स्वांग धारण करती है। परमात्मराजा का सकल अंग पुष्ट करती है।

अन्य लौकिक स्त्री तो बल का हरण करती है और यह आत्मपरिणतिरूपी स्त्री तो सदा आत्मबल को पुष्ट करती है। लौकिक स्त्री तो कभी-कभी रस भंग करती है और यह चैतन्य परिणतिरूपी स्त्री तो सदा अखंडित रस को करती है और सदा अनाकुलता लक्षण आनन्द प्रगट करती है। परमात्म राजा को प्यारी, सुख देनेवाली, अतीन्द्रिय विलास करनेवाले परिणति-परमराणी को अपनी जानकर आप राजा (आत्मद्रव्य) भी उससे दुराव (द्विधाभाव, मायाचार, विषयभाव) नहीं करे, किंतु अपना अंग (स्वरूप) देकर प्रत्येक समय अपने में, अपने अंग में (स्वरूप में) मिला लेता है। राजा तो परिणति से मिलते ही उनके रंगी (उस स्वरूप) होता है, और राजा से परिणति मिलते ही राजा के रंगी होती है, अर्थात् परिणति परमात्म राजा के स्वरूप ही होती है। इसप्रकार एक रसरूप अनुपम भोग भोगते हैं। परमात्मा राजा और शुद्ध परिणतिरूपी स्त्री का विलास, उसका सुख अपार है, इसकी महिमा अपार है, यह परमात्म राजा का राज सदा शाश्वत अचल है, अनंत अव्याबाध है, अनंत वर्णन किया जाय तो भी पार नहीं आता। विस्तार में वर्तमान अल्प बुद्धि है, इसलिये समझ में सर्व न आवे, इसलिये अल्प वर्णन किया है। जो गुणवान हैं, वह इस अल्प ही को बहुत समझ लेंगे, इस ही में सम्पूर्ण आया है, समझदार जानेंगे।

सवैया

परम पुराण लखे पुरुष पुराण पावे सही ह्वै
स्वज्ञान जाकी महिमा अपार है।
ताकी किये धारण उधारणा स्वरूप का ह्वै,
ह्वै है निस्तारणा सो लहै भवपार है॥

राजा परमातम को करत बखान महा,
दीपकौ सुजस बढै सदा अविकार है।
अमल अनूप चिदरूप चिदानंद भूप,
तुरत ही जानै करै अरथ विचार है॥१॥

दोहा

परम पुरुष परमातमा, परम गुणों का स्थान।
उसकी रुचि नित कीजिये, पावै पद भगवान॥२॥

श्री दीपचंदजी साधर्मीकृत—परमात्म पुराण संपूर्ण

एक पद

[राग कल्याण]

(रचयिता—श्री कवि रूपचंदजी)

चेतन परसौं प्रेम बढ्यो।
स्वपर विवेक बिना भ्रम भूल्यो, मैं में करत रह्यो।चे०॥
नरभव रतन जतन बहुतै करि, कर तैरै आइ चढ्यो।
सु क्यौं विषय सुख लागि हारिए, सवगुन गठनि गठ्यो।चे०॥
आरँभ में कुसियार कीट ज्यौं, आपुहि आपु मठ्यो।
'रूपचंद' चित चेतन नाहि नै, सुक ज्यौं व्यर्थ पढ्यो।चे०॥

सुवर्णपुरी (सोनगढ़) समाचार

परम उपकारी पूज्य गुरुदेव सुख-शांति में विराज रहे हैं। भाद्रपद सुदी ५ से १४, दस लक्षण पर्व में सबेरे प्रवचन में श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा में से उत्तम क्षमादि दस धर्म पर तथा श्री समयसारजी शास्त्र में से ४७ शक्तियों पर प्रवचन तथा दोपहर को प्रवचनसार—चरणानुयोग चूलिका अधिकार में गाथा २३२ से सम्यक्चारित्र ऊपर प्रवचन होते थे। अब प्रवचनसार—चारित्र अधिकार सबेरे व समयसार—४७ शक्तियों पर प्रवचन—दोपहर को होते हैं।

इस वर्ष भी दसलक्षण पूजन मंडल विधान पूर्वक पर्यूषण पर्व खूब उत्साह व धर्म महिमा पूर्वक मनाया गया।

परम उपकारी पूज्य गुरुदेव के प्रवचन व सत्समागम का लाभ लेने के लिये हिन्दी भाषी धर्म जिज्ञासुओं की संख्या बढ़ती जा रही है, उनके रहने की व्यवस्था के लिये जैन धर्मशाला बनवाने का निश्चय किया गया है।

भाद्रपद सुदी ५ के रोज सबेरे श्री जिनमंदिर में सुशोभित मंडप में मंडल विधान सहित बृहत् दसलक्षण मंडल व्रत विधान पूजा शुरु करने में आई थी। पूजन विधान पूर्ण होने के बाद पूज्य गुरुदेव का स्वाध्याय मंदिर में प्रवचन, बाद में ९ से १०॥ श्री जिनेन्द्र भगवान को गंधकुटीवाले रथ में विराजमान करके भव्य रथयात्रा निकाली गयी थी। उसमें बाहर गाँव के मेहमानों की संख्या बहुत थी, भक्ति व भजन की धुन सहित वन में जाकर वहाँ भव्य मंडप में श्री जिनेन्द्र भगवान का शुद्ध जल से अभिषेक-पूजन करके खूब ठाठबाट से भक्ति-स्तवन-नृत्य-गान-हर्षनाद-जयनाद पूर्वक जिनमंदिरजी में वापस आकर पहुँचे। मंदिरजी में आकर भक्तजनों ने खूब उत्साह से हाथ में चँवर लेकर नृत्य सहित भक्ति की धुन लगाई।

जिनेन्द्र भक्ति की अपूर्व महिमा व धर्म प्रभावना का उत्साह प्रगट कर रहे थे। दोपहर को प्रवचन व बाद में जिनमंदिर में हमेशा की तरह भक्ति का कार्यक्रम होता था।

संध्याकाल को एक घंटा सामूहिक प्रतिक्रमण भाईयों में तथा बहनों में अलग-अलग अपने-अपने स्थान में होता था।

रात्रि को हमेशा की तरह पुरुषों की सभा में पूज्य गुरुदेव के पास प्रश्नोत्तररूप चर्चा होती थी।

भाद्रपद सुदी १०—सुगंधदशमी

अनंत चतुर्दशी का दिन बारह मास में विशेष धर्म पर्व मानने में आता है, आज के दिन उपवास करनेवालों की संख्या काफी मात्रा में थी। उत्तरप्रदेश से खास लाभ लेने को आनेवाले भाईयों की संख्या भी बहुत थी। उसमें मुख्यता से दिल्ली, भोपाल, गुना, इंदौर, जयपुर, उदयपुर, आदि तथा श्री नेमीचंदजी पाटनी (आगरा), श्री मीठालालजी महेन्द्रकुमारजी सेठी (जयपुर), श्री नवनीतभाई सी. झवेरी, बम्बई तथा सागर से श्रीमान् सेठ श्री भगवानदासजी तथा श्री शोभालालजी तथा श्री रतनलालजी (कानपुर) टींबरनी, गंजबासौदा के भाईयों एवं तारण स्वामी दिगम्बर जैन समाज के पंडित जयकुमारजी आदि सभी जनों ने दसलक्षण पर्व में पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों का उत्साहपूर्वक लाभ लिया। इस वर्ष के पर्युषण पर्व में अनेक धर्म उत्सवमयी प्रकार की विशेषताएँ थीं।

दसलक्षण धर्म पर्व संबंधी बाहर गाँव के

खास समाचार

इस पर्युषण पर्व में बाहर गाँव से विद्वानों के लिये आमंत्रण आये थे, उस मुताबिक १३ गाँवों में सोनगढ़ दिगम्बर जैन मुमुक्षु महामंडल के प्रचार विभाग द्वारा विद्वानों को भेजने में आया था। उसमें से जिन गाँवों से समाचार आये हैं, वे निम्न प्रकार हैं।

(१) इंदौर—

श्री खीमचंदभाई जेठालाल शेठ खास उनके लिये दिगम्बर जैन समाज के धर्मरत्न श्रीमंत सेठ श्री राजकुमारसिंहजी द्वारा आमंत्रण आया था। भाद्रपद सुदि ४ से १४; दिन में तीन बार व्याख्यानों में पूज्य गुरुदेव द्वारा जैनधर्म के सिद्धांतानुसार तत्त्वज्ञान का उपदेश हो रहा है, उसी का स्पष्टीकरण तथा जिनेन्द्र भगवान की अष्ट द्रव्यों से पूजा का पारमार्थिक अर्थ सहित स्पष्टीकरण करने में आया था। इंदौर की समस्त जैन समाज ने बहुत लाभ लिया। इस संबंध के समाचार में श्री

प्रकाशचंदजी पांड्या लिखते हैं कि:—

तारीख १४-९-६२ इंदौर में परम पुनीत दस लक्षण पर्व में जैन समाज इंदौर द्वारा आमंत्रित आध्यात्मिक प्रखर जैन विद्वान पंडित खीमचंदभाई जे० शाह द्वारा दस दिन तक रोज सबेरे-दोपहर को व रात्रि को सरल, सरस, निर्भीक तथा ओजस्वी प्रवचन हुये जिससे जैन समाज तथा विशेषरूप से नवयुवक वर्ग अत्यंत प्रभावित हुये। पंडितजी साहब ने विपरीत मान्यताओं का निराकरण करके वस्तु तत्त्व को अतिशय स्पष्टरूप से समझाया। पंडितजी ने यथार्थ श्रद्धा, जिज्ञासा, आचरण द्वारा स्वयं की आत्मा को सर्वप्रथम समझने की मार्मिक अपील की थी। सभा में हमेशा २००० के करीब धर्म जिज्ञासुओं की संख्या रहती थी।

जैन समाज के माननीय श्री मिश्रीलालजी गंगवाल (मध्यप्रदेश के वित्तमंत्री महोदय) की अध्यक्षता में धर्मस्नेह व कृतज्ञता के प्रतीकरूप पंडित खीमचंदभाई सेठ को सन्मान पत्र सभा में सादर समर्पण करने में आयाथा।

इस अवसर पर जैन रत्न सेठ श्री राजकुमारसिंहजी, विद्वत्वर्य पंडित श्री नाथूलालजी न्यायतीर्थ, श्री इंदौरीलालजी बड़जात्या एडवोकेट, श्री बाबूलालजी पाटौदी (विधानसभा सदस्य) आदि विद्वानों द्वारा विशेष भाषण हुये। जिसमें श्री खीमचंदभाई सेठ का उदात्त चारित्र, प्रज्ञा, विचक्षणता, उत्तम प्रतिभा तथा अध्यात्म शास्त्र की गम्भीर विवेचना सरल व बोधपूर्ण पद्धति से व्यक्त करने की अपरिमेय शक्ति की प्रशंसा करने में आयी थी। आबाल युवक, वृद्ध तथा संस्थाओं की तरफ से पंडित जी का स्वागत करके उनके माध्यम से समाज को पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के प्रति अपनी श्रद्धा के पुष्प समर्पण किये थे। पंडितजी के प्रवचनों से शिक्षितवर्ग व नवयुवक वर्ग खास करके अतिशय प्रभावित हुये, तथा उनकी जिज्ञासा व आस्था को स्थिर व प्रबल किया है। ता० १४-९-६२ को उज्जैन आदि जैन समाजों के आमंत्रण होने से उज्जैन, भोपाल, गुना पधारे। तारीख १४-९-६२ लश्करी मंदिर।

लि० प्रकाशचंद पांड्या, मंत्री श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, गोराकुंड, इंदौर।

(२) दिल्ली—

श्री दिगम्बर जैन नया मंदिर २५१५, १ धर्मपुरा श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा आमंत्रण से श्री बाबूलाल चुन्नीलाल मेहता (फतेपुर) इनको भेजने में आया था। दसलक्षण पर्व में करोलबाग पहाड़ी धीरज, पहाड़गंज, वैदवाड़ा जिनमंदिर में कार्यक्रम था तथा भारत जैन

महामंडल तरफ से विश्वमैत्री दिवस क्षमायाचना पर्व तारीख १५-९-६२ की बड़ी सभा में सर्वप्रथम प्रवचन श्री बाबूलालजी का था। परम उपकारी पूज्य गुरुदेव द्वारा जैन धर्म का प्रकाश चारों ओर फैल गया है, उसकी महानता श्री बाबूलालजी द्वारा बताकर उसका अतिशय सुंदर स्पष्ट प्रतिपादन करके दिल्ली जैन समाज को अतिशय आनन्द और धर्म वात्सल्य के आप कारण बने हो। श्री बाबूलालजी ने दिवस-रात्रि को ८ से १० घंटे प्रवचन; शंका समाधान, जिनेन्द्र पूजा, भक्ति द्वारा सतत अपनी असाधारण नम्रता, धीरज सहित विद्वत्ता का लाभ दिया है।

वैदवाडा खंडेलवाल दिगम्बर जैन मंदिर पंचायत तरफ से आपको सम्मानपत्र देने में आया है। दिल्ली से मुमुक्षु मंडल के प्रमुख श्री सुरेन्द्रकुमारजी तथा मंत्री श्री श्रीपालजी द्वारा आये हुये समाचार खूब विस्तार से हैं लेकिन उन्हें यहाँ संक्षेप में करके लिखा है। उसका सार यह है कि—परम उपकारी पूज्य गुरुदेव ने सभी को ज्ञानी बना दिया है, कोई भी किसी से कम नहीं है। अपूर्व ज्ञान का भंडार खोल दिया है। तमाम जैन समाज सोनगढ़ की प्रशंसा करती है व इर्षावश गलत प्रचार करनेवालों की बातें झूठी साबित हो गयी हैं, भूल से निंदा करने का पश्चाताप भी कितने ही जन करते थे।

श्री बाबूभाई के प्रवचन की शैली से आकर्षित खास विशेष धर्म जिज्ञासावान करीब ४०० भाई १० मील दूर से सुनने के लिये आते थे और रात्रि ११ बजे घर पहुँचते थे। इस युग में सत्पुरुष के निमित्त से हमें अपूर्व (अभूतपूर्व) वस्तु श्रवण करने का अवसर मिला, वह हमारे महान भाग्य हैं। हमें, जो सत्य पूज्य गुरुदेव ने सुनाया है उसी सत्य को तमाम जनता प्रसन्नचित्त होकर बड़ी शांति सहित सुनते थे। सभा में संख्या ५०० से ८००, और बाबूभाई जब भक्ति कराते थे, उस समय १००० संख्या होती थी।

प्रवचन बहुत सुंदर पद्धति से मनोहर ढंग से होता था, प्रभु के दर्शन किसप्रकार से करना चाहिये, भक्ति, सामायिक, उपवास, व्रत, सोलहकारणभावना तथा पूजा अष्टद्रव्ययुक्त किसे कहा जाय, उत्तम क्षमादि दस धर्म में भी निश्चय-व्यवहार क्या तथा तत्त्वार्थसूत्रजी के दिव्य विवेचन द्वारा जैनधर्म का अपूर्व महत्व हृदय से ओतप्रोत होकर समझाते थे। आज से ही लोग बारंबार प्रार्थना करते हैं कि आगामी साल के लिये पधारने की कृपा करें और पूज्य कानजी स्वामी की जन्मजयन्ती अवसर पर खुद पूज्य स्वामीजी का दिल्ली पधारना हो, ऐसी विनती की।

(—श्रीपाल जैन मंत्री, श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल)

(३) बम्बई (घाटकोपर): —

दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के आमंत्रण से श्री प्राणलाल शाह नौ दिन रहकर दिन में तीन बार पूज्य गुरुदेव का परम उपकार प्रकाशित करने के साथ श्री समयसारजी कर्ताकर्म अधिकार, श्री पंचास्तिकाय, मोक्षमार्ग प्रकाशक ऊपर प्रवचन किये थे। सभा में ५०० तक संख्या होती थी, श्री नेमिनाथ भगवान की रथयात्रा, अभिषेक पूजनादि कार्यक्रम में जैन समाज ने बहुत ही उत्साह से भाग लिया था। पूज्य गुरुदेव के पुनीत प्रभाव से यह मंडल आगे बढ़ेगा ही, ऐसा सब कार्यकर्ताओं के उत्साह से ज्ञात होता है।

श्री प्राणलालभाई ने अहमदाबाद से आकर जो महान अमूल्य लाभ दिया है, इसलिये हम सभी इपका बहुत आभार मानते हैं। सबेरे, दोपहर व रात्रि तीनों समय प्रवचन देकर सर्वज्ञ भगवान के सिद्धांत समझाने में संपूर्ण सफल हुये हैं। आपकी संगति द्वारा यहाँ स्थान-स्थान पर जिज्ञास जन तत्त्वज्ञान की वार्ता में मशगुल हो रहे थे वह भी आपके मार्मिक और हृदयस्पर्शी प्रवचनों का फल है।

श्री प्राणलाल भाई फिर भी ऐसा ही सुंदर सहयोग देते रहेंगे ऐसी प्रार्थना है।

लि० घाटकोपर दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल (बम्बई) मानद मंत्री रसिकलाल,

(४) खंडवा—

दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के आमंत्रण से बुलंदशहरवाले श्री कैलाशचंद्रजी को भेजने में आया था। वहाँ के मंत्रीजी लिखते हैं कि पंडितजी ने १५ दिन अत्यंत उत्साह से लगभग १० घंटा तक प्रतिदिन द्रव्य, गुण, पर्याय, जैन सिद्धांत प्रवेशिका में से चार अभाव, पाँच भाव, नौ तत्त्व, निमित्त-नैमित्तिक संबंध आदि विषयों पर बहुत सरल और स्पष्ट और प्रभावना पूर्ण प्रवचन किये। जैन शिक्षण वर्ग चलाकर अपूर्व जागृति पैदा कर दी। हाईस्कूल में भी एक घंटा आमसभा में भी प्रवचन तथा एक घंटा शंका-समाधान का कार्यक्रम रखा था। पंडितजी का अथक परिश्रम देखकर समाज को आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता था। उनके परिश्रम की हम जितनी प्रशंसा करें थोड़ी है। पंडितजी की प्रवचन शैली बहुत उत्तम है, गूढ़ से भी गूढ़ विषयों को भी खूब सरल शैली से समझाते थे। अत: समाज को विशेष धर्म लाभ हुआ है, समाज अत्यंत आभारी है, फिर बारबार हमारे यहाँ आपके विद्वान पधारें और समाज में धर्म के प्रति विशेष रुचि उत्साह तथा सच्ची जागृति फैले।

—लि० दयाचंद शाह

(५) दाहोद (गुजरात)—

दि० जैन मुमुक्षु मंडल के आमंत्रण से श्री चंदुलालजी (अहमदाबाद) को भेजने में आया था।

यहाँ धर्म जिज्ञासु भाईयों की संख्या बहुत है। श्री चन्दुभाई ने विद्वत्ता द्वारा परम उपकारी पूज्य गुरुदेव के अपूर्व तत्त्वज्ञान का प्रसाद बाँटा था। आत्मार्थी के योग्य व्याख्यान शैली थी, उपरांत जैन शिक्षण वर्ग में करीब ५०-६० भाई-बहिन लाभ लेते थे। धर्म प्रभावना में वृद्धि हो, ऐसा सरल कार्यक्रम था। श्री चन्दुभाई के लिये खूब-खूब प्रसन्नता दर्शक पत्र श्री सुमतिलालजी की तरफ से आये हुये हैं।

(६) अहमदाबाद—

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के द्वारा पत्र है कि आपने हमारी विनती का स्वीकार करके श्रीमान् भाईश्री छोटेलालजी को भेजा इसलिये आभार। आपके आने से हमारे लिये बहुत गौरव का प्रसंग बन गया। कारण उनकी प्रवचन शैली गंभीर भावों से भरी हुई आकर्षक होने से समाज बहुत प्रसन्न हुई और तेरह दिन के उनके समागम से कोई महान उत्सव मनाया गया हो इतना हर्ष था। उनकी 'अस्ति' से स्थापन करके युक्ति के बल से तत्त्व निरूपण करने की पद्धति से सभी जन बहुत प्रसन्न हुये। प्रश्नोत्तर भी खूब होते थे जो सभी को बहुत संतोषजनक थे।

हमेशा रोज सबेरे ८ से ९ बजे समयसारजी की छट्ठी गाथा के ऊपर प्रवचन, स्थान— हंसराज प्रागजी हॉल। रात्रि मोक्षमार्गप्रकाशक में से सम्यक्त्व सन्मुख मिथ्यादृष्टि के ऊपर प्रवचन ठि० खाडिया अमृतलाल की पोल दिगम्बर जैन धर्मशाला।

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा चुन्नीलाल दोशी मानद मंत्री।

(७) सागर (मध्यप्रदेश)

चोधरनबाई श्री दिगम्बर जैन मंदिर पंचायत की ओर से आमंत्रित होने से पंडित श्री गेंदालालजी शास्त्री (बूँदी) भेजे गये थे। ऋषिमंडल विधान स्थापित कर सामूहिक रूप से जप हवन होकर पर्यूषण पर्व उत्साह पूर्वक समाप्त हुआ। पंडितजी द्वारा रोजाना १० बजे से १२ बजे तक तत्त्वार्थसूत्र का सार्थ प्रवचन और रात्रि को दशलक्षण धर्म पर प्रवचन होता था। पंडितजी के सारगर्भित प्रवचनों से समाज को अपूर्व लाभ हुआ। पंडितजी विद्वान, धर्मश्रद्धानी एवं चारित्रशील हैं। उनकी शंका समाधान की शैली उत्तम है, अच्छी है। इसमें प्रचार समिति को विशेष श्रेय है जो ऐसे विद्वान द्वारा सत्य धर्म का प्रसार करा रहे हैं। —डालचंद सिंघई, सागर

(८) कलकत्ता:—

दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल का आमंत्रण होने बनारस से पंडित श्री फूलचंदजी शास्त्री द्वारा १५ दिन तक प्रवचन हुआ। उसमें जैन समाज के प्रमुख पंडित की तरह करणानुयोग के ग्रंथ,

धवल, जयधवल शास्त्र तथा आलाप पद्धति, जैन तत्त्व मीमांसा आदि अनेक ग्रंथों के सफल संपादक के रूप में उनका स्थान अद्वितीय है। पूज्य स्वामीजी समयसारजी आदि शास्त्रों में से अनुभवपूर्ण मोक्षमार्ग का जो स्पष्ट प्रकाश कर रहे हैं, उसी को शास्त्राधार सहित पंडितजी की विशेष स्पष्ट करके समाज के सामने सुंदर ढंग से प्रतिपादन करने की शक्ति बहुत प्रशंसनीय है।

(९) चोटीला (सौराष्ट्र):—

दिगम्बर जैन संघ के आमंत्रण से पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों के लिये टेपरेकोर्डिंग रील लेकर मधुकरजी को आमंत्रित किया गया था। वहाँ टेप रील द्वारा प्रवचन सुनाये गये, भक्ति का कार्यक्रम भी रखा गया जैन-अजैन जनता ने अच्छा लाभ लिया, धर्म प्रभावना हुई।

(१०) प्रतापगढ़ (राजस्थान):—

दिगम्बर जैन समाज की ओर से पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों के लिये टेपरेकार्डिंग रील लेकर मधुकरजी को भेजने का आमंत्रण होने से दसलक्षण पर्व के ऊपर मंदिरजी में सुंदर कार्यक्रम रखा गया था। सबेरे-शाम को दो घंटे प्रवचन तथा एक घंटा भक्ति का कार्यक्रम, मधुकरजी द्वारा हमेशा होता था।

जैन समाज का खास प्रेम भरा आग्रह होने से तारीख १७-९-६२ तक ठहराया था। वहाँ से नारायणगढ़, कुशलगढ़, लश्कर, ग्वालियर, भिंड, भोपाल, सिलवानी, गंजबासौदा, जयपुर तक का कार्यक्रम है।

(११) भोपाल (मध्यप्रदेश)—

तारीख १९-९-९२ मुमुक्षु मंडल भोपाल के हार्दिक आमंत्रण को स्वीकार करके श्री खीमचंदभाई सेठ इंदौर, उज्जैन होकर सोमवार को भोपाल आये। समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा स्टेशन पर काफी संख्या में हाजिर रहकर इनका अपूर्व उत्साह से स्वागत किया। जैन तत्त्व के विशेष मर्मज्ञ आदरणीय श्री खीमचंदभाई द्वारा दिगम्बर जैन मंदिर चौक में तारीख १७-१८ सितम्बर, सोमवार, मंगलवार, दो दिन महत्त्वपूर्ण प्रवचन हुये। रोज-तीन समय सबेरे ८ से ९ दोपहर को २ से ३ तथा रात को ९ से १० इन समयों पर उपरोक्त प्रवचन श्रवण करने के लिये बाहर गाँव से आये हुये मुमुक्षु भाई तथा स्थानीय जैन समाज हजारों की संख्या में हाजिर रहकर अध्यात्मिक प्रवचन अत्यंत रुचि से श्रवण किये। श्रोताजनों का ऐसा कहना था कि हमारे जीवन में आध्यात्मिक जैसे गंभीर विषय पर इतना सरस, मधुर व प्रभावशाली विवेचन श्रवण करने का यह

प्रथम ही अवसर था। श्री पंडितजी के इन विशुद्ध, तात्त्विक प्रवचनों से समाज का वातावरण अध्यात्मरसमय बन गया था।

निश्चय-व्यवहार निमित्त-उपादान क्रमबद्धपर्याय सम्यक् पुरुषार्थ आदि महान उपयोगी सिद्धांतों के ऊपर आपने सरलतम दृष्टांतों द्वारा इतना सुंदर प्रकाश डाला कि जिससे केवल श्रोताओं की भ्रांति ही दूर हुई हो, इतना ही नहीं किंतु उनको अपूर्व शांति और आनन्द का अनुभव हुआ।

तारीख १८-९-६२, दोपहर को ४ से ५ बजे दिगम्बर जैन मंदिर में आपको प्रवचन हुआ तथा हेवी. इलेक्ट्रीकल्स पिलानी के भाईयों द्वारा आग्रह होने से वहाँ एक घंटा प्रवचन हुआ। जिसमें बड़ी भारी संख्या में जिज्ञासु भाईयों ने लाभ लिया। तथा मध्यप्रदेश के वित्तमंत्री माननीय श्री मिश्रीलालजी गंगवाल भी इस अवसर पर खास पधारे थे। रात्रि को शास्त्र प्रवचन के बाद जैन धर्मशाला में विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में दिगम्बर जैन समाज की ओर से आपका शानदार स्वागत किया गया तथा आपकी सेवा में सन्मान पत्र (अभिनंदन पत्र) भेंट किया गया।

आपके प्रति प्रदर्शित उक्त सन्मान के उत्तर में श्री खीमचंदभाई सेठ ने कहा कि "वास्तव में मैं स्वयं अपने को इस अभिनंदन के योग्य नहीं समझता। जब मुझे सन्मान पत्र की स्वीकृति का भी राग न हो अर्थात् पूर्ण वीतरागी हो जाऊँ, तभी मैं इस अभिनंदन के योग्य हो सकूँगा।" आपने अंत में कहा कि आप सभी भाईयों ने जिस धर्म के प्रति रुचि प्रगट की है और हार्दिक स्नेह मुझे प्रदान किया है, उसके लिये मैं आप सभी का आभारी हूँ। अंत में श्री सुरजमलजी द्वारा आदरणीय पंडितजी तथा उपस्थित श्रोताओं के प्रति आभार व्यक्त करके कार्यक्रम समाप्त किया गया।

—लि० मंत्री—श्री राजमल जैन।

(१२) उज्जैन (मध्यप्रदेश)—

श्री चांदमलजी गाँधी का पत्र है कि—सोनगढ़ निवासी सत्धर्म प्रेमी सेठ खेमचंदभाई जेठालाल उज्जैन मुमुक्षु मंडल के निवेदन पर दो दिन के लिये तारीख १४-९-६२ को रात्रि को ११ बजे उज्जैन पधारे, बिनोद भवन के गेस्ट हाउस में उनका जैन समाज के प्रमुख व्यक्तियों तथा मुमुक्षु मंडल द्वारा भव्य स्वागत किया गया तथा उन्हें गेस्ट हाउस में ठहराया गया। तारीख १५-९-६२ को प्रातः नमक मंडी जैन मंदिर में, दोपहर को स्वाध्याय मंदिर तथा रात्रि को उपरोक्त मंदिरजी में प्रवचन हुआ, जनता उनके प्रवचनों से अत्यधिक आकर्षित हुई, पंचायत के लोग अपने-अपने मंदिरजी में प्रवचन के लिये माँग करने लगे, किंतु समयाभाव से सभी की मांग की पूर्ति करना

कठिन था, फिर भी दूसरे दिन ५ प्रवचन का आयोजन किया गया, जनता में जिन्होंने एक बार प्रवचन श्रवण किया वह दूसरा जो स्थान प्रवचन के लिये निश्चित किया जाता था, वहाँ पर बड़ी उत्सुकता से श्रवण करते थे, गरज यह है कि जनता बड़ी प्रभावित थी। तारीख १६-९-६२ रात्रि को स्वाध्याय मंदिर में सेठ सा० के सन्मान में जैन समाज व मुमुक्षु मंडल की तरफ से अभिनन्दन पत्र चाँदी के कास्केट में भेंट किया। उक्त विधि सेठ श्री राजकुमारसिंहजी (इन्दौर) के सुपुत्र श्री जंबुकुमारसिंहजी के सभापतित्व में संपन्न हुई, इस अवसर पर इंदौर, भोपाल, बड़नगर आदि से मुमुक्षु बंधुगण भी पधारे थे, अपूर्व धर्म प्रभावना हुई। अंत में सेठ सा० से समस्त जैन समाज ने निवेदन किया कि अगले पर्यूषण पर्व पर इस अपूर्व अध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ देने अवश्य पधारें। —चाँदमल गाँधी

(१३) गुना (मध्यप्रदेश)—

मंत्री श्री केवलचंदजी पांड्या द्वारा गुना से पत्र है कि हमारे निमंत्रण को स्वीकार कर कठिन परीषह सहन कर अध्यात्म ज्ञान प्रसारक श्री खेमचंदजीभाई सेठ गुना पधारे। आपका यहाँ पर जैन समाज एवं जैन वीर दल ने गार्ड ऑफ ऑनर दिया। पश्चात् बैण्ड बाजे के साथ एक चल समारोह नगर में निकाला। यहाँ पर आपका दो दिन तक व्यस्त कार्यक्रम रहा, जिसमें अपनी सरल, सुशोभित, मधुर वाणी से श्री मुनिपूजा, निश्चय-व्यवहार, श्री परमागम समयसारजी पर विस्तृत मार्मिक प्रवचन तथा जिनेन्द्र पूजन में अष्टद्रव्य से पूजा का पारमार्थिक अद्‌भुत अर्थ किया। जिससे जैन समाज एवं अजैन बंधुवर्ग ने काफी धर्म लाभ लिया। इस प्रभावना से प्रेरित होकर जैन समाज ने आपको अभिनंदन पत्र देकर आपका स्वागत किया। इस अवसर पर अशोकनगर, कोटा, राधौगढ़, आरौन, कुम्भराज, म्याना आदि अनेक स्थानों से अनेक धर्म जिज्ञासु भाईयों ने आकर लाभ लिया। (विशेष समाचार तथा उस समय किये गये प्रवचन आगामी अंक में देंगे।)

श्री समयसारजी शास्त्र

सर्वोत्तम शास्त्र, उत्तम छपाई, बढ़िया कागज और मूल्य बहुत कम रखा होने से बहुत जोरों से माँग आ रही है। तदनुसार भेज रहे हैं। १५०० बुक छपी है शायद दो मास में बिक जायेंगी। अत: दस बुक से ज्यादा देना बंद है। —प्रकाशक

ज्ञाननेत्र खुलते ही आत्मा का दर्शन होता है

सहज आनंद पाइ रहो निज में लौ लाइ,
दोरि दोरि ज्ञेय में धुकाइ क्यों परतु है।
उपयोग चंचल के कीये ही अशुद्धता है,
चंचलता मेटें चिदानंद उघरतु है।
अचल अखंड ज्योति भगवान दीसतु है,
नैयकतें देखी ज्ञाननैन उघरतु हैं।
सिद्ध परमात्मा सों निजरूप आतमा,
आप अवलोकि 'दीप' शुद्धता करतु है।

भावार्थ:—अरे जीवो! सहज आनन्द प्राप्त करके निजस्वरूप में ही लौ लगाकर रहो; दौड़-दौड़कर परज्ञेयों में क्यों झुक पड़ते हो? उपयोग को चंचल करने से अशुद्धता होती है और वह चंचलता मिटाकर निजस्वरूप में उपयोग स्थिर करने से चिदानंद प्रगट होता है। उस अंतर उपयोग द्वारा अचल-अखंड ज्योतिस्वरूप भगवान आत्मा दृष्टिगोचर होता है; उसे देखते ही ज्ञाननेत्र खुल जाते हैं और उन ज्ञाननेत्रों द्वारा सिद्ध परमात्मा समान अपने आत्मा के निजस्वरूप का अवलोकन करके जीव अपनी शुद्धता को प्राप्त करता है।

[— कवि श्री दीपचंदजी रचित 'ज्ञानदर्पण' से]

नया प्रकाशन

(१) कविवर पंडित श्री टेकचंदजी विरचित पंचमेरु-नंदीश्वर पूजन विधान तथा वर्धमान निर्वाण पूजा २४ जिन निर्वाण तथा त्रैलोक्य, कुंडलवर आदि जिनालय पूजा संग्रह, हिन्दी भाषा में पृष्ठ संख्या १८०, मूल्य १-०, पोस्टेजादि अलग।

(२) कविवर पंडित श्री टेकचंदजी विरचित दशलक्षण व्रत विधानादि पूजा। पृष्ठ ९०, मूल्य ०.७५।

(३) छहढाला, मूल मात्र। मूल्य ०-१५, पोस्टेजादि अलग।

छप रहे हैं:—

(१) समयसार शास्त्रजी में कर्ताकर्म अधिकार के ऊपर पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचन भाग ४ प्रथम बार छपता है, आधा छप चुका है, तैयार होने पर सूचित करेंगे।

(२) अनुभवप्रकाश (श्री दीपचंदजी शाह कासलीवाल कृत) दूसरी बार छप रहा है।

(३) छहढाला सुबोध टीका सुगम शैली से सेठी ग्रंथमाला की ओर से दूसरी बार छप रही है।

(४) जैन बाल पोथी।

(५) लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका।

श्री कुन्दकुन्द-कहान प्रकाशन मन्दिर
व्य० श्री दि० जैन मुमुक्षु मंडल-बम्बई के द्वारा

— नया प्रकाशन —

श्री समयसारजी-परमअध्यात्मशास्त्र

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत सर्वोत्तम अध्यात्मशास्त्र, श्री अमृतचंद्राचार्य कृत संस्कृत टीका सहित हिन्दी अनुवाद। प्रकाशक श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, संचालित श्री कुन्दकुन्द-कहान प्रकाशन मंदिर ठि० १७३-७५, मुम्बादेवी रोड, बम्बई-२।

यह अद्वितीय जगतचक्षु समान आध्यात्मिक ग्रन्थाधिराज है, परिभाषण पद्धति से जो सूत्र रचना हो, वह सर्वोत्तम मानी जाती है। जैसी मूल सूत्रों की सर्वोत्तम रचना श्री कुन्दकुन्दाचार्य की है, ठीक वैसी ही आत्मख्याति नामक टीका सर्वोत्तम है, वीतरागता, और स्वतंत्रता ग्रहण करने की रुचि से पढ़ने से उसका रसास्वाद आता है।

जिसमें ज्ञानी-अज्ञानी जीवों का स्वरूप, भेदविज्ञान, नवतत्त्वों का रहस्य खोलनेवाले सात अधिकार, कर्ताकर्म, सर्वविशुद्धज्ञान, अनेकान्त, ४९ शक्ति, मोक्षमार्ग का स्वरूप, साध्यसाधक भाव का स्वरूप आदि का सुस्पष्ट वर्णन है। उस पर सातिशय प्रचंड निर्मल तत्त्वज्ञान के धारक अजोड़ महर्षि श्री अमृतचन्द्राचार्य की सर्वोत्तम सं० टीका है। अत्यंत अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) जीवों को भी जिसमें समझाया गया है। हिन्दी अनुवाद, दूसरी आवृत्ति, इस ग्रंथ में गाथाएँ लाल स्याही से छपी हैं, कुछ गाथाएँ सुनहरी कलर में हैं। बढ़िया कागज पर सुन्दर ढंग से छपने पर भी मूल्य लागत से भी बहुत कम रखा है, सभी जिज्ञासु यथार्थतया लाभ लेवें, ऐसी भावनावश इस ग्रन्थाधिराज का मूल्य मात्र ५) रुपया रखा है। पोस्टेजादि अलग। पृष्ठ संख्या ६४१ बड़े आकार।

मंगाने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

[नोट—यह शास्त्र बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता, भोपाल, उज्जैन, विदिशा, इन्दौर, जयपुर, गुना आदि गाँवों में दि० जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा प्राप्त हो सकेंगे।]

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

पंचास्तिकाय	४ ॥)
नियमसार	५ ॥)
समयसार पृष्ठ ६१६ बड़ा साइज	५)
मूल में भूल (नई आवृत्ति)	।।।)
श्री मुक्तिमार्ग	॥=)
श्री अनुभवप्रकाश	॥)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)
समयसार प्रवचन भाग १	४ ॥।)
समयसार प्रवचन भाग २	५ ॥)
समयसार प्रवचन भाग ३	४ ॥)
प्रवचनसार	५)
अष्टपाहुड़	३)
मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र०	१ ।=)
द्वितीय भाग	२)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	॥–)
द्वितीय भाग	॥–)
तृतीय भाग	॥–)
जैन बालपोथी	।)

[डाकव्यय अतिरिक्त]

ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२ ॥)
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका सजिल्द	५)
सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१.८५)
छहढाला (नई टीका)	॥ ।–)
जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह कपड़े की जिल्द	१ ।=)
अपूर्व अवसर प्रवचन और श्री कुन्दकुन्दाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा	८५ न.पै.
भेदविज्ञानसार	२)
अध्यात्मपाठसंग्रह	५)
समाधितंत्र	२ ।=)
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=)
स्तोत्रत्रयी	॥)
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	=)
'आत्मधर्म मासिक' लवाजम–	३)
आत्मधर्म फाइलें १–३–५–६–७–८–१०–११–१२–१३ वर्ष	३ ।।।)
शासन प्रभाव	=)

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।